(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २॥) सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई। एक अंक का ।)
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ९] मथुरा, १ फरवरी सन् १९४८ ई० [अंक २

पराजय-विजय की पहली सीढ़ी है।

यदि सच्चा प्रयत्न करने पर भी तुम सफल न हो तो कोई हानि नहीं। पराजय बुरी वस्तु नहीं है, यदि वह विजय के मार्ग में अग्रसर होते हुए मिली हो। प्रत्येक पराजय विजय की दशा में कुछ आगे बढ़ जाना है। उच्चतर ध्येय की ओर पहली सीढ़ी है। हमारी प्रत्येक पराजय यह स्पष्ट करती है कि अमुक दिशा में हमारी कमजोरी है, अमुक तत्व में हम पिछड़े हुए हैं या किसी विशिष्ट उपकरण पर हम समुचित ध्यान नहीं दे रहे हैं। पराजय हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित करती है, जहां हमारी निर्बलता है, जहां मनोवृत्ति अनेक ओर बिखरी हुई है, जहां विचार और क्रिया परस्पर विरुद्ध दिशा में बह रहे हैं, जहां दुःख क्लेश, शोक, मोह इत्यादि परस्पर विरोधी इच्छाएँ हमें चंचल कर एकाग्र नहीं होने देतीं

किसी न किसी दिशा में प्रत्येक पराजय हमें कुछ सिखा जाती है। मिथ्या कल्पनाओं को दूर कर हमें कुछ न कुछ सबल बना जाती है, हमारी विश्रृंखल वृत्तियों को एकाग्रता का रहस्य सिखाती है। अनेक महापुरुष केवल इसी कारण सफल हुए क्योंकि उन्हें पराजय की कड़वाहट को चखना पड़ा था।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

युग पुरुष बापू का आत्मदान

ता० ३० जनवरी की सन्ध्या को एक अविवेकी व्यक्ति द्वारा युग पुरुष महात्मा गान्धी की हत्या कर दी गई। वे अपने रक्त की अन्तिम बून्दों से पागल दुनियां की आसुरी तृष्णा बुझाते हुए परमात्मा की अखंडज्योति में लीन होगये।

महात्मा जी कांग्रेस के या हिन्दू ही जाति के न थे। वे भारत के पास अन्तराष्ट्रीय धरोहर के रूप में थे। उन्हें सूक्ष्म मानवता की स्थूल प्रतिमा कहा जासकता है। भगवान बुद्ध के बाद भारतभूमि में ऐसी उज्वल विभूति महात्मा गान्धी ही अवतीर्ण हुए थे। संसार के इतिहास में उनके जोड़ के उंगलियों पर गिनने लायक ही महापुरुष हुए हैं। कई दृष्टियों से तो वे अपने आप में अपूर्व थे। ऐसे युग पुरुष के उठ जाने से भारत की, कांग्रेस की, हिन्दू जाति की ही नहीं—समस्त विश्व की, आध्यात्मिक और धार्मिक शक्तियों की, भारी क्षति हुई है।

भौतिक लालसाओं से व्याकुल, अनुदारता और स्वार्थ परता की मदिरा पीकर उन्मत्त दुनियां के लिए महात्मागान्धी की आध्यात्मिक विचार धारा एक बांध थी। वे एक ऐसे प्रकाशस्तंभ, ध्रुव तारा थे जिसे देखकर यह आशा की जाती थी कि भ्रान्त मानव उन्हें देखकर अपना कल्याण पथ ढूंढ सकेगा। आज वह प्रकाश स्तंभ बुझ गया, यह देखकर विश्व मानव का अन्तःकरण एक बारगी छलनी होगया है, उसके कलेजे में रह रह कर एक हूक उठ रही है।

महा प्रभु ईसा मसीह के बाद संसार ने इतने दीर्घकाल बाद एक दूसरे महामानव गान्धी को देखा था। अब न जाने कितनी शताब्दियां, सहस्त्राब्दियां, फिर ऐसी विभूति के दर्शन के लिए संसार को प्रतीक्षा में बितानी पड़ेंगी। जिस व्यक्ति ने उनकी हत्या की उसके पागलपन, उन्माद, अविवेक के लिए तो क्या कहा जाय। उस बेवकूफ ने तो इस बात की कल्पना भी न की होगी कि वह कितना गुरुतम कुकृत्य करने जारहा है। उसके इस पाप से देश के मुख पर कैसी कालिख पुत जायगी वह दुनियां की नजरों में कितना गिर जायगा।

विचार भेद होनेपर उसके लिए अन्य तरीके हो सकते हैं पर अविवेकी व्यक्ति जो कर डाले वही थोड़ा है। असंतुलित मस्तिष्क वाले व्यक्ति अपने लिए, अपने निकटवर्तियों के लिए, दूरस्थों के लिए, समस्त संसार के लिए कैसे अभिशाप सिद्ध होते हैं, कैसी विपत्ति, कैसी क्षति, कैसी पीड़ा उपस्थित कर देते हैं इसका एक उदाहरण इस महान् दुर्घटना को भी कहा जा सकता है। छोटे मोटे रूप में ऐसी आपत्तियाँ—अविवेकी, अदूरदर्शी, आवेश ग्रस्त मनुष्यों द्वारा नित्य, हर घड़ी उपस्थित की जाती रहती हैं। इन बातों पर गंभीर विचार करते ही इस निश्चय पर पहुंचना होता है कि मनुष्यों के मानसिक धरातल को ऊँचा उठाने की कितनी अधिक आवश्यकता है। बिना इसके आजादी तो क्या साक्षात् स्वर्ग का पृथ्वी पर अवतरण भी कुछ विशेष उपयोगी नहीं होसकता। अखंडज्योति इस आवश्यकता को सर्व प्रथम समझती है और सबसे प्रथम जनता का आन्तरिक उत्कर्ष करने पर जोर देती है, जब कि दूसरे लोग धन की वृद्धि में देश का उत्थान देखते हैं।

हमारे बापू का शरीर आज हमारे बीच में नहीं है। यह कल्पना मनमें आते ही हृदय रो पड़ता है। हमारे हृदयों में इस क्षति की मर्मान्तक व्यथा होरही है। फिर भी हम जानते हैं कि महात्मा जी की आत्मा हम लोगों के बीच में मौजूद है और अपनी मौन वाणी से वही प्रवचन कर रही है जो बापू नित्य प्रति प्रार्थना सभा में किया करते थे। आइए, उन मौन संदेशों को सुनें और उनका पालन करके उनकी आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

मथुरा १ फरवरी सन् १९४८

दान में विवेक की आवश्यकता

भिक्षा वृत्ति एक प्रकार का महान उत्तर-दायित्व है, जिसका भार उठाने के लिए विरले ही व्यक्तियों को साहस होना चाहिए। शास्त्रकारों ने भिक्षा को अग्नि से उपमा दी है, जैसे अग्नि को बड़ी सावधानी से स्पर्श करने की, पूर्ण सतर्कता के साथ यथोचित स्थान में रखने की और विवेक पूर्वक प्रयोग में लाने की आवश्यकता होती है, वैसे ही भिक्षा को ग्रहण करना, ग्रहण करके उसे रखना और फिर उसे उपयोग में लाना बहुत ही सावधानी का काम है। जिस प्रकार थोड़ी सी असावधानी बरतने पर अग्नि की एक छोटी सी चिनगारी बड़े भयंकर, घातक परिणाम उपस्थित कर देती है वही हाल भिक्षा का है, यदि इस "अग्नि वृत्ति" का थोड़ा भी गलत उपयोग किया जाय तो बड़े व्यापक पैमाने पर भयानक अनिष्ट उत्पन्न हुए बिना नहीं रहते।

(१) यज्ञार्थाय और (२) विपद् वारणाय, इन दो कार्यों के लिए ही शास्त्रकारों ने भिक्षा का विधान किया है। इन दो कार्यों के लिए ही भिक्षा दी जानी चाहिए। यज्ञ का अर्थ है पुण्य, परोपकार, सत्कार्य, लोक कल्याण, सुख शान्ति की वृद्धि, सात्विकता का उन्नयन। जिन कार्यों से समिष्टि की-जनता की-संसार में श्रेय और अभ्युदय की, अभिवृद्धि होती हो उन लोकोपयोगी कार्यों के लिए भिक्षा ली जानी चाहिए। शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, सहयोग, सुख, सुविधा बढ़ाने के कार्यों के लिए जो प्रयत्न किये जाते हैं वे तथा मानवीय स्वभाव में सत् तत्व को—प्रेम—त्याग, उदारता, क्षमा, विवेक, धर्मपरायणता, ईश्वर, प्रणिधान, दया, उत्साह, श्रम, सेवा, संयम आदि सद्गुणों को बढ़ाने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं, इन दोनों ही प्रकार के कार्यों को अनुष्ठान को यज्ञ कहा जाता है। आजकल अनेक संस्थाएं इस प्रकार के कार्य कर रही है। प्राचीन समय में कुछ व्यक्ति ही जीवित संस्था के रूप में जीवन भर एक निष्ठा से काम करते थे। स्वर्गीय श्री गणेश-शंकर विद्यार्थी की मृत्यु पर महात्मा गांधीने कहा था कि "विद्यार्थी जी एक संस्था थे।" जिसका जीवन एक निष्ठा पूर्वक, सब प्रकार के प्रलोभनों और भयों से विमुक्त होकर यज्ञार्थ—लोक सेवा के लिए—लगा रहता है वे व्यक्ति भी संस्था ही हैं। प्राचीन समय में ऐसे यज्ञ रूप, ब्रह्म परायण व्यक्तियों को ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, प्रोहित, आचार्य, योगी, सन्यासी आदि नामों से पुकारते थे। जैसे संस्था की स्थापना के लिए आजकल दफ्तर कायम किये जाते हैं और इन दफ्तरों का मकानभाड़ा खर्च करना होता है उसी प्रकार उन 'संस्था व्यक्तियों' ऋषियों की, आत्मा के रहने के मकान—उनके शरीर—का मकान भाड़ा, भोजन, वस्त्र आदि का निर्वाह व्यय, खर्च करना पड़ता था। जैसे मकान भाड़े के लिए और संस्थाओं के अन्य कार्यों के लिए धन जमा किया जाता है वैसे ही दान, पुण्य, भिक्षा, आदि द्वारा उन ऋषि संस्थाओं को पैसा दिया जाता था। उन ऋषियों का व्यक्तित्व, उच्च, अधिक उच्च, इतना उच्च, होता था जिसके सम्बन्ध में किसी प्रकार के संदेह की कल्पना तक उठने की गुंजायश न होती थी, इसलिये जनता उन्हें पैसा देकर उस पैसे के

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work will be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

सदुपयोग के सम्बन्ध में पूर्णतया निश्चिन्त रहती थी, उसका हिसाब जांचने की आवश्यकता न थी। ऋषि लोग भिक्षा द्वारा प्राप्त धन का उत्तम सदुपयोग स्वयं ही कर लेते थे।

देव पूजन, दान दक्षिणा आदि के नाम पर लोग स्वयमेव समय समय पर कई बहानों से संस्कार, पर्व, कथा, तीर्थ, पूजा, अनुष्ठान, व्रत, उद्यापन आदि के समय ब्राह्मणों का दान देते थे। उन ब्रह्म परायण संस्था व्यक्ति-ब्राह्मणों-के द्वारा होने वाले लोकोपयोगी कार्यों से जनता पूरी तरह प्रभावित रहती थी और उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उनके लिए समुचित साधन जुटाने के लिए धन व्यवस्था करने में कोई कमी न रहने देती थी।

व्यक्तिगत रूप से इन ब्राह्मणों की आवश्यकताएं बहुत ही स्वल्प होती थी, पीपल के छोटे २ फल-पिप्पली-खाकर निर्वाह करने वाले पिप्पलाद ऋषि थे। खेत काटने पर जो अन्न के दाने खेतों में फैले रह जाते थे उन्हें बीन कर वे गुजारा कर लेते थे। रहने को फूंस की झोंपड़ी, पहनने को कटिवस्त्र, भोजन में कंद मूल, इस निर्वाह को जुटा लेना कुछ खर्चीला न था। दान दक्षिणा में प्राप्त धन वे लोग प्रायः लोकोपकारी कार्यों के लिये ही लगा देते थे। तक्षशिला जैसी युनीवर्सिटियां जिनमें तीस-२ हजार छात्र पढ़ते थे और एक एक हजार आचार्य पढ़ाते थे एक दो नहीं सैकड़ों की संख्या में थी, जहां छात्रों और गुरुजनों का भोजन व्यय उन युनिवर्सिटियों की ओर उठाया जाता था, यह धन-दान द्वारा ही प्राप्त होता था। सर्जरी और चिकित्सा के सर्वोत्तम साधनों से सम्पन्न वृहत्तम अस्पताल इन ऋषियों द्वारा चलते थे। ज्योतिष, मनोविज्ञान, योग, धर्म, शिक्षा, नीति, कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, शिल्प, राजनीति आदि के सम्बन्ध में उन ऋषियों की विचार सभायें बैठती थीं और महत्वपूर्ण अनुसंधान करके तत्सम्बन्धी खोजों को ग्रन्थों के रूप में, उपदेशों के रूप में, अनुभव शालाओं के रूप में जनता के सामने उपस्थित करते थे। वायुयान, जलयान, रेडियो, युद्ध अस्त्र, रसायन आदि नाना प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधानों के करने के लिए ऋषियों के आश्रमों में ही प्रयोगशालायें रहती थीं। उनमें सदैव वैज्ञानिक अनुसंधान होते रहते थे। इस प्रकार के कार्यों का व्यय इस दान पर ही निर्भर रहता था।

वे प्रातःस्मरणीय ब्राह्मण लोग केवल जनता के द्वारा दिये जाने वाले दान पर ही निर्भर न रहते थे वरन् उनके घरों पर जाकर द्वार द्वार पर भिक्षा भी माँगते थे। इस भिक्षाटन में बड़ा भारी रहस्य, महत्व और लाभ सन्निहित होता था। भिक्षा प्रयोजन को लेकर महात्मा लोग उन व्यक्तियों के घर पर भी स्वयमेव पहुंचते थे जो सत्संग के लिए ऋषि आश्रमों में पहुंचने का समय नहीं निकाल पाते थे। इन घरों में जाकर वे अधिक से अधिक पांच ग्रास तक भिक्षा ग्रहण करते थे, इससे अधिक इसलिए नहीं लेते थे कि देने वाले पर अधिक भार न पड़े, उसकी आर्थिक स्थिति को आघात न पहुंचे। भिक्षा लेकर वे चम्पत न हो जाते थे वरन् दाता के घर की स्थिति मालूम करते थे और उसकी कठिनाइयों को हल करके महत्व पूर्ण पथ प्रदर्शन करते थे। कहना न होगा कि इस प्रकार का भिक्षाटन उन लोगों का स्वर्ण सौभाग्य होता था जिनके घर पर ऐसे भिक्षुक जा पहुंचते थे। दो चार ग्रास अन्न देना या लेना कुछ महत्व नहीं रखता पर इस बहाने थोड़े समय के लिए भी जिन्हें उन महात्माओं को अपने दरवाजे पर पधारने का सौभाग्य मिल जाता था वे उनके बहुमूल्य उपदेशों से कृत्य कृत्य हो जाते थे। बीमारी गरीबी, क्लेश, कलह, अनीति, भीति, भ्रान्ति आदि की दारुण कठिनाइयों से वह सत्सङ्ग, गृहस्थों को अनायास ही पार लगा देता था। आज वकील, डाक्टर, वैज्ञानिक, प्रोफेसर आदि की सलाह या सेवा लेनी हो तो उसके बदले उनकी खुशामद के साथ मोटी रकम अदा करनी पड़ती है, परन्तु

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

उस समय इन सब योग्यताओं के भंडार ऋषि लोग पांच ग्रास भिक्षा मांगने के लिए जनता जनार्दन के द्वार द्वार पर पहुंचते थे और इस बहाने से जनता को अपनी अमूल्य सम्मतियों से उपकृत करते थे।

इसके अतिरिक्त भिक्षा के दो और भी प्रयोजन हैं एक तो यह कि दान देने से देने वाले को त्याग का, परोपकार का, पुण्य का, आत्म संतोष प्राप्त होता था दूसरा यह कि उन ऋषि कल्प ब्राह्मणों को अपने अभिमान एवं अहंकार के परिमार्जन करते रहने का अवसर मिलता था। भीख मांगकर जीविका ग्रहण करने से विनय, नम्रता, निरभिमानता कृतज्ञता एवं ऋणी होने का भाव उनके मनमें जाग्रत बना रहता था। वे अपने में लोक सेवक, परोपकारी तथा महात्मापनकी अहम्मन्यता उत्पन्न न होने देने के लिए भिक्षुक की तुच्छ स्थिति ग्रहण करते थे। ऐसे भिक्षुकों को दान देते हुए देने वाले अपना मान अनुभव करते थे और लेने वाले निरभिमान बनते थे। इससे उन दोनों के बीच सुदृढ़ सौहार्द उत्पन्न होता था। भिक्षा वृत्ति करने वाले की अपेक्षा, देने वाले को ही अधिक लाभ रहता था। इस परमार्थ और परमार्थ की भावना से ब्रह्म जीवी महात्माओं के लिए भिक्षा का विधान किया गया था।

इस प्रकार यज्ञार्थ भिक्षा ब्राह्मणों द्वारा ग्रहण की जाती थी, वे इस प्राप्त हुए धन को लोक कल्याण के, जनता की सुख समृद्धि की वृद्धि के कार्यों में व्यय करते थे, अपना शरीर और मन उन्होंने परमार्थ में लगा रखा होता था, इन शरीरों को क्षुधा, तृषा, शीत, धूप निवारण से रक्षा के लिए भी कुछ व्यय हो जाता था तो वह भी यज्ञ की आहुति के समान ही फलदायक होता था। ब्राह्मणों को दान दक्षिणा या भिक्षा देने का यही वास्तविक तात्पर्य था, ब्राह्मण इसीलिए भिक्षा जीवी होते थे। जो व्यक्ति या जो संस्था, लोक हित के कार्यों में लगे हैं वह ब्राह्मण है, उसे भिक्षा मांगने या प्राप्त करने का अधिकार है। यज्ञार्थ के लिए भिक्षा उचित है, शास्त्र सम्मत है। ब्रह्म कार्यों के लिए या ब्रह्म जीवी व्यक्तियों के लिए भिक्षा का प्रयोजन धर्म सम्मत है।

इसके अतिरिक्त दूसरी श्रेणी 'विपद् वारणाय' है। संकट ग्रस्तों का संकट दूर करने के लिए, सहायता देना मानवीय अन्तःकरण का दैवी तत्व को सुरक्षित रखने एवं विकसित करने के लिए आवश्यक है। इससे मनुष्य में दया उत्पन्न होती है। दुखियों का दुख देखकर हर एक सच्चे मनुष्य का हृदय करुणा से पूरित हो जाता है और आंखें छलक पड़ती हैं। इस दैवी प्रेरणा को तृप्त करने से ही मनुष्य परमात्मा के निकट पहुंचता है। दूसरों को कष्ट में देखकर जो लोग अपना कलेजा पत्थर का कर लेते हैं—निष्ठुरता धारण कर लेते हैं—अनुदारता एवं स्वार्थ परता में निमग्न होकर उनकी ओर उपेक्षा प्रकट करते हैं ऐसे मनुष्य असुरता को प्राप्त होकर नर पिशाच का जीवन बिताते हैं। पीड़ितों की सहायता करना, दुखियों को दुख से छुड़ाना, आवश्यक है, इसके लिए शरीर से, बुद्धि से, धन से जैसे भी बन पड़े सहायता करनी चाहिए। विपद् वारणाय भिक्षा देनी चाहिए।

अग्निकांड, जल प्रवाह, अकाल, चोरी, आक्रमण, अन्याय, दुर्दैव आदि किसी आकस्मिक कारण से जो लोग असहाय हो गए हों, जिनकी अपनी सामर्थ्य नष्ट हो गई हो, गिर पड़े हों, अपने पैर पर आप खड़े न हो सकते हों, उनको सहायता देने की आवश्यकता है। जिनका शरीर एवं मस्तिष्क उपार्जन शक्ति के लिए बिलकुल अनुपयुक्त हो गया हो उनको सहायता की जरूरत है। इस प्रकार के व्यक्तियों को पैसे की सहायता जरूरी होती है। परन्तु अन्य अनेक प्रकार के पीड़ित ऐसे हैं जिन्हें पैसे की नहीं, शरीर एवं बुद्धि की सहायता आवश्यक होती है। शोक, चिन्ता, उद्विग्नता, क्लेश, कलह, निराशा, भय, ईर्षा, क्रोध, लोभ, तृष्णा, अहंकार, द्वेष, और

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

अज्ञान आदि मानसिक संकटों से अनेक मनुष्य ग्रसित होते हैं, वे उतना ही कष्ट पाते हैं जितना कि कठिन रोगों के रोगियों को कष्ट होता है। ऐसे लोगों की पैसे से सहायता हो जाय तो कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, उनके लिए बुद्धि द्वारा, विवेक द्वारा, जो सहायता पहुंचाई जाती है वही सच्ची सहायता है। जिनके पास पैसा है, जो आसानी से अपने स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त पैसा खर्च कर सकते हैं उन्हें मुफ्त दवा बांटना निरर्थक है। उन्हें उपयोगी चिकित्सा विधि का मार्ग बताना एवं उस मार्ग तक पहुंचने में क्रियात्मक सहायता देना पर्याप्त है। किसी करोड़पती अमीर को तपेदिक हो जाय तो उसे मुफ्त दवा की आवश्यकता नहीं, उत्तम चिकित्सक तथा उत्तम चिकित्सा स्थान के परिचय की आवश्यकता है। इस प्रकार की सहायता देना और उपयुक्त साधन से मिला देना पर्याप्त है।

गरीब आदमी को पैसा देने मात्र से काम नहीं चलता। उसे गरीबी से छुड़ाने के लिए किसी कारोबार से लगा देना होगा बहुत से गरीब ऐसे हैं जिनकी शारीरिक योग्यताएं कुछ काम करने योग्य हैं, बहुत से अंग भंग मनुष्य, अंधे, असमर्थ, भी ऐसे होते हैं जो शरीर के अन्य अंगों से काम लेकर जीविका उपार्जन कर सकते हैं। जैसे लंगड़े आदमी, हाथ से हो सकने वाले धंधे कर सकते हैं, अंधे, गूंगे, बहरे, कुबड़े भी किसी न किसी प्रकार की-मजूरी कर सकते हैं। जिनके शारीरिक अंग असमर्थ है उन्हें यदि पढ़ा लिखा दिया जाय तो वे वाणी, विचार और बुद्धि से हो सकने वाले अध्यापकी आदि कार्य कर सकते हैं। गरीबों या असमर्थों को तात्कालिक आरंभिक कुछ सहायता की आवश्यकता अवश्य होती है पर उनकी सच्ची सहायता यह है कि उन्हें समझा बुझाकर काम करने, स्वतंत्र जीविका उपार्जन के लिए तैयार किया जाय और उनके उपयुक्त काम ढूंढ़ देने की व्यवस्था बनाई जाय। इसी प्रकार अग्निकाण्ड-जल प्रवाह, अकाल, आक्रमण चोरी आदि से पीड़ित व्यक्तियों को आरंभ में तात्कालिक सहायता पहुंचाने के बाद अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य बनाने में मदद करनी चाहिए। विपत्ति में पड़े हुए व्यक्तियों को आरंभ में कुछ धन की सहायता होती है। परन्तु वस्तुतः उन्हें उठाकर खड़े कर देने के लायक साधन और मनोबल देने की अधिक जरूरत रहती है।

स्थायी रूप से उन विपद् ग्रस्तों को भिक्षा-वृत्ति ग्रहण करने का अधिकार है जो शरीर और बुद्धि की दृष्टि से बिलकुल असमर्थ हैं। जिनको निकट कुटुम्बियों से सहायता प्राप्त करने की भी सुविधा नहीं हैं। अनाथ, बालक, गरीब, रोगी, पागल, अतिवृद्ध, अपाहिज तथा कोढ़ आदि अस्पर्श्य रोगों वाले व्यक्ति स्थायी रूप से दान के अन्न से अपना निर्वाह कर सकते हैं। ऐसों की जीवन रक्षा करने के लिए जीवनोपयोगी अन्न वस्त्र एवं निवास स्थान आदि की सुविधाएं देना समाज का कर्तव्य है।

यहां स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि विपद् ग्रस्तों को दूसरों की वही सहायता लेनी चाहिए जो वे अपनी शेष शक्तियों से नहीं कर सकते। वह सहायता उन्हें उतने ही समय तक एवं उतनी ही मात्रा में लेनी चाहिए जिससे वे अपने पैरों पर खड़े हो जावें। फिर जो सहायता लें उसे कर्ज रूप से ग्रहण करें और मन में दृढ़ संकल्प रखे कि समर्थ होते ही उस सहायता को दूसरे पीड़ितों को व्याज समेत चुका देंगे। असहाय या असमर्थ व्यक्तियों को भिक्षा अन्न के बदले लोक कल्याण की शुभ कामनाएं, आशीर्वादात्मक सद्भावनाएं देते रहना चाहिए और मन में ध्यान रखना चाहिए, इस जन्म में या अगले जन्म में समर्थ होने पर इस ऋण को समाज के लिए पुनः लौटा देंगे। इस प्रकार विवेक पूर्वक लिया हुआ और दिया हुआ दान ही सार्थक होता है। उसी को वास्तविक दान कह सकते हैं।

—अपूर्ण

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

चमत्कारों का केन्द्र—ईश्वर।

ईश्वर की सृष्टि में चारों ओर चमत्कार ही चमत्कार हैं। परमात्मा इतना बड़ा बाजीगर है कि उसकी झोली में से हर घड़ी एक से एक अचरज भरे खेल निकलते रहते हैं। प्रकृति का भंडार भानमती का पिटारा है उसमें एक से एक अनौखी और हैरत में डालने वाले चीजें भरी पड़ी हैं। जब तब ध्यान न दिया जाय तब तक संसार की सारी बातें साधारण प्रतीत होती हैं पर जब ध्यान से देखते हैं तो एक से एक बड़े कौतूहल हमें अपने चारों ओर बिखरे हुए दिखाई पड़ते हैं।

जादूगर लोग धूलि हाथ में लेकर उस पर विद्या चलाता है और एक फूल बना कर दिखाता है, दर्शक खुशी से फूले नहीं समाते, पर दूसरी ओर देखिए बरगद का राई से भी छोटा बीज लेकर धरती माता उसे कितना विशाल बट वृक्ष बना देती है। इतने नन्हें बीच से इतना विशाल काय वृक्ष उत्पन्न होना कितने आश्चर्य की बात है। इतनी नगण्य वस्तु के गर्भ में इतना बड़ा वृक्ष छिपा बैठा रहता है यह कितना बड़ा अचंभा है। आकाश में कोई वस्तु ठहरती नहीं, यदि हम आकाश में किसी वस्तु को ठहराना चाहें तो वह न ठहरेगी और हाथ से छोड़ते ही धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ेगी, पर दूसरी ओर देखिए लाखों करोड़ों टन पानी लादे हुए आकाश में बिना पंखों के बादल उड़ते फिरते रहते हैं। जादूगर एक गोला आकाश में अधर लटकादे तो दर्शकों की तालियां गड़गड़ाने लगती हैं पर उस जादूगर का करतब तो देखिए कल्पनातीत वजन के असंख्य ग्रह नक्षत्र आकाश में टँगे हुए हैं, बाँधने रोकने या सहारा देने के लिए न तो कोई तार है न रस्सी। खुले मैदान खेल होरहा है जिसका जीचाहे बिना टिकट, चाहे जब तक, देखता रहे।

अतीत काल से सूरज की अग्नि जल रही है, इसमें न तो कोई ईंधन डालता है न लकड़ी न कोयला। बिना किसी आधार के अग्नि अपने आप सुदीर्घकाल जलती रहे क्या यह कुछ कम अचंभे की बात है। बिना तेल बत्ती के चन्द्रमा का दीपक ठीक समय पर जलता और ठीक समय पर बुझता है। बिना किसी मशीन, मोटर, फिनर या चाबी के आकाश मंडल के ग्रह नक्षत्र ठीक गति से घूमते रहते हैं। घड़ी में गलती होसकती है पर इन ग्रह नक्षत्रों की चाल में राई रत्ती भर फर्क नहीं पड़ने पाता। वर्षा आरंभ होते ही पृथ्वी पर असंख्य धारों के फव्वारे छूटने लगते हैं। हरी हरी कोमल घास की पत्तियां सारी भूमि पर शीतल सजीव मखमली फर्श बिछा देती है! नन्हें नन्हें फूल खिलकर उनमें बेल बूटे से जड़ जाते हैं। चन्दन, देवदारु, अगर, कदम्ब आदि के वृक्ष नाना प्रकार के पुष्प मानों इत्रों में डूबे खड़े हैं, अपनी भीनी सुगन्ध से वे संसार को हर घड़ी मनमोहक गंध हर घड़ी प्रदान करते रहते हैं। बिना पंखे के कोई अदृश्य शक्ति हमारे ऊपर हर घड़ी पंखा झलती रहती है। वायु का चलना सचमुच एक चमत्कार है।

परमात्मा की विलक्षण जादूगरी के करतब कहां तक गिनावें। उसकी कारीगरियां एक से एक बिलक्षण हैं। नाना आकृतियों के जीव जन्तु पशु-पक्षी, कीड़े, मकोड़े, पेड़, पौदे हमें दिखाई पड़ते हैं। इनमें से हर एक अपने ढंग का अकेला है। एक से दूसरे की शकल नहीं मिलती, हर एक में कुछ न कुछ अलग कारीगरी है। नदी पर्वत, वन एक से एक सुहावने हैं। भारी खर्च करके लोग बर्फ बनाने का एक छोटा सा कार खाना खड़ा करते हैं पर वह जब बर्फ बनाने खड़ा होता है तो बिना किसी मशीन के पर्वतों और समुद्रों को हिमि आच्छादित कर देता है। कमरे को ठंडा या गर्म करने के लिए लोग बड़ा परिश्रम करने पर अनुकूल तापमान करने में कुछ थोड़ी सी सफलता प्राप्त करते हैं पर जब वह जादूगर

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

अपना डंडा उठाता है तो शीत ऋतु को बदल कर गर्मी में और गर्मी को सर्दी में परिणित कर देता है। समुद्र जैसे तालाब खोदना और नदी जैसी नहरें निकालना मर्त्यलोक के इंजीनियरों के बस में नहीं हैं। कटपुलियों को नचा कर तमाशे वाले कौतूहल पैदा कर देते हैं पर जरा देखिये तो सही, खाक के पुतले, जीवधारी बिना किसी तार या डोरे के कैसे चलते फिरते और नाचते कूदते हैं, बिना रिकार्ड चढ़ाये तरह २ की बोलियां बोलते हैं। और तो और वे अपने क्षण भंगुर अस्तित्व पर इतराते भी हैं। रीछ और बन्दरों से मनुष्यों जैसी क्रियाएँ कराने वाले कलन्दर शाबासी पाते हैं। पर उस कलन्दर को तो देखिए जिसकी कटपुतलियां अपने कामों पर खुद घमंड करती हैं। काम, क्रोध, मोह, मद मत्सर से प्रेरित होकर ऐसे ऐसे स्वांग करती हैं जिन्हें देखकर जागृत आत्माएँ हँसते हँसते लोट पोट हुए बिना नहीं रह सकतीं।

उसके छिपाने की बलिहारी है। ऐसी तिजोरी किसी को मुश्किल से ही मिलेगी। जमीन के पेट में उसने सोना, चांदी, तांबा, लोहा आदि धातुओं, विविधि खनिजपदार्थों, हीरा, पन्ना, नीलम, पुखराज आदि रत्नों को छिपा रखा है। समुद्र की तली में मोतियों की राशियाँ और मूंगों की चट्टानें दबी पड़ी हैं। इस अकूत सम्पत्ति का क्या ठिकाना है न जाने कितने लाख करोड़ का यह वैभव है।

खाक से मनुष्य, मनुष्य से खाक। वृक्ष से बीज, बीज से वृक्ष। बादल से पानी, पानी से बादल। खाद से अन्न, अन्न से खाद। तकदीर से तदबीर, तदबीर से तकदीर, इस प्रकार के जोड़े मिला कर बुद्धि को चकरा देने वाली पहेलियां उसने उपस्थित कर दी हैं उसके झोले में न जाने क्या क्या हैरतें भरी पड़ी हैं। जब मनुष्य मचल पड़ता है और उसकी झोली कुरेदने की जिद ठान बैठता है तो वह एकाध खिलौना ऐसा निकाल कर दे देता है, उस खिलौने को पाकर बालक मनुष्य फूला नहीं समाता। पिछली दशाब्दियों और शताब्दियों में उसने ऐसे कई खिलौने पाये हैं। रेडियो, टेलीफून, रेल, तार, हवाई जहाज, बिजली आदि को लेकर वह हँस कूद रहा है, परमात्मा के झोले में ऐसे अनन्त खिलौने भरे पड़े हैं, एक से एक अद्भुत हैं। उस मदारी की माया अपार है।

जिधर देखिए उधर हैरत ही हैरत बरस रही है, एक से एक अद्भुत वस्तु उसने बना बनाकर रखदी है, वह जादूगरों का जादूगर है, करामातियों का गुरु है, सिद्धों का सिद्ध है, वह चाहे जो दिखा सकता है, चाहे जो बना सकता है। चाहे जो कर सकता है। हर बात उसके लिए संभव है, हर चीज उसकी मुट्ठी में है। उससे बड़ा कोई सिद्ध नहीं, उससे बड़ा कोई चमत्कारी नहीं, उससे अधिक किसी में शक्ति नहीं, वह सर्व शक्तिमान है।

निर्मल सुरसरी जिसके द्वार पर बहती हो उसे ताल तलैयों में पानी ढूँढ़ने जाने की क्या जरूरत? सिद्धों का सिद्ध, महा चमत्कारी परमात्मा अपने हृदय में, अपने से निकटतम स्थानों पर मौजूद है तब अन्य सिद्धों को तलाश कराने जाने से क्या प्रयोजन? छोटे बालक छोटे खिलौने से अपना मन बहलाते हैं पर प्रबुद्ध पुरुष को उन मिट्टी के खेल खिलौनों में कोई रस नहीं, वह बड़ी वस्तुओं पर अपना ध्यान एकत्रित करता है और ऊंचे कामों में रस लेता है। आध्यात्मिक दृष्टि से जो मनुष्य अभी बालक है वे तरह तरह के चमत्कारों की तलाश में फिरते हैं और उनसे अपना मन बहलाते हैं विस्मय में डाल देने वाले कार्य कर दिखाने वाले व्यक्ति उन्हें सिद्ध जँचते हैं और उन्हें कृपा पात्र बन कर वे अपनी अभीष्ट अभिलाषाओं की पूर्ति चाहते हैं परन्तु विवेक वालों का मार्ग भिन्न है। वे परमसिद्ध परमात्मा की शरण में जाते हैं और इसे प्राप्त कर अनन्त चमत्कारों जैसी सिद्धि के भागी बनते हैं।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

एक रूपता नहीं-एकता !

(श्री स्वामी सत्यभक्त जी वर्धा)

मैं धर्म का अन्धश्रद्धालु नहीं हूं पर विरोधी भी नहीं हूं। निःसन्देह धर्म के नाम पर खून बहाया गया है, पर यह अन्तर न भूलना चाहिये कि धर्म के नाम पर खून बहाया गया है-धर्म के लिये खून नहीं बहाया गया। शैतान भी अपनी शैतानी के लिए खुदा के नाम की ओट ले लेता है, तो मनुष्य ने अपने दुस्वार्थों के लिए अगर धर्म की ओट ले ली तो इसमें धर्म क्या करे ? जो नियम समाज के विकास और सुख-शान्ति के लिए जरूरी हैं उनका मन से, वचन से और शरीर से पालन करने का नाम धर्म है, इस धर्म का उस खून खराबी से कोई सम्बन्ध नहीं है-जो धर्म के नाम पर स्वार्थ या अहंकार-वश की जाती है।

कहा जा सकता है कि जब धर्म का ऐसा दुरुपयोग होता है तब धर्म को नष्ट ही क्यों न किया जाय ? मैं कहता हूं कि भोजन के दुरुपयोग से जब बीमारियां पैदा होती हैं तब भोजन ही बन्द क्यों न कर दिया जाय ? आजीवन अनशन करने से मौत भले ही आ जाय पर बीमारी से छुट्टी जरूर मिल जायगी। क्या आप बीमारी के डर से इस प्रकार मरना पसन्द करते हैं ? यदि नहीं, तो दुरुपयोग के डर से धर्म को छोड़ना भी पसन्द नहीं किया जा सकता है।

मैं मानता हूं कि धर्म भोजन से भी ज्यादा जरूरी चीज है। जो चीज जितनी पतली होती है उसकी जरुरत भी उतनी ही ज्यादा होती है। रोटी बहुत जरूरी है पर पानी रोटी से भी ज्यादा जरूरी है, पानी रोटी से पतला है। रोटी के बिना हम जितने दिन जिन्दा रह सकते हैं, पानी के बिना उतने दिन जिन्दा नहीं रह सकते। पर पानी से पतली है-हवा। पानी पिये बिना हम घण्टों जिन्दा रह सकते हैं, पर हवा लिए बिना हम मिनटों भी जिन्दा नहीं रह सकते। धर्म हवा से भी पतला है, उसके बिना हम जरा भी जिन्दा नहीं रह सकते। प्रेम सहयोग आदि धर्म के ही रूप हैं, जो कि कीड़ों, मकोड़ों और पशु-पक्षियों में भी पाये जाते हैं, इसलिए धर्म व्यापक है, नित्य है, और आवश्यक है। उसमें विकार आते हैं, जीवन भी विकृत और दुःखी हो जाता है, इसलिए हमें विकारों को नष्ट करना चाहिये, धर्म को नहीं।

एक बात और है जब तक मनुष्य के पास हृदय है तब तक धर्म किसी न किसी रूप में जिन्दा रहेगा ही। धर्म का भीतरी रूप तो रहता ही है पर बाहरी रूप भी नष्ट नहीं होता, सिर्फ उस में परिवर्तन हो जाता है। ईसा की मूर्ति के सामने घुटने टेकने की जगह लेनिन की कब्र पर फूल चढ़ाना आ जाता है। प्रतीक बदल जाते हैं, वृत्ति नहीं बदलती। इसलिये धर्म को मारने की कोशिश व्यर्थ है, उसका दुरुपयोग ही रोकना चाहिए।

परन्तु धर्म की इस अमरता से उन लोगों को खुश होने की जरूर नहीं है, जो धर्म के नाम पर रूढ़ियों के और साम्प्रदायिकता के गुलाम बने रहना चाहते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि धर्म रूढ़ियों का अजायबघर नहीं है, किन्तु सत्य अहिंसा आदि नियमों का समूह है और धर्म-संस्था एक समय की सामाजिक क्रान्ति है। तीर्थंकर, पैगम्बर, अवतार आदि अपने समय के क्रान्तिकारी महापुरुष हैं। कोई भी क्रान्ति स्थिर नहीं होती, न आगे की दूसरी क्रान्तियों का विरोध करती है। क्रान्ति की मित्रता रूढ़ियों से नहीं है। इसलिये धर्म की मित्रता रूढ़िया से नहीं कही जा सकती।

इस प्रकार धर्म की बात कह कर मैं धर्म-विरोधी और धर्म के नाम पर रूढ़ि के पुजारी, दोनों के दिलों में कुछ न कुछ क्षोभ पैदा करूंगा। इसको दूर करने के लिए मैं इतना ही कहूंगा कि न तो आप प्राचीनता के पुजारी बनें न नवीनता

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

के। आप जनकल्याण के पुजारी बनें! इसी दृष्टि से धर्मों का जिस रूप में जैसा उपयोग हो सके, निष्पक्ष होकर वैसा ही करें।

धर्म-संस्थाओं का मुख्य काम आदमी के दिल पर नीति और सदाचार के संस्कार डालना है। सभी धर्मों ने यही काम किया है। इसलिए मैं धर्मों में समानता देखता हूं और धर्म-संस्थाओं की संख्या से घबराता नहीं हूं। बहुत से स्कूल होने से या अनेक विश्वविद्यालय होने से जैसे शिक्षा में बाधा नहीं पड़ती, किन्तु कुछ लाभ ही होता है, उसी प्रकार बहुत-सी धर्म-संस्थाएँ होने से सच्चे धर्म में बाधा नहीं पड़ती।

पर शर्त इतनी है कि धर्म को धर्म समझिये, अहंकार का सहारा नहीं। मेरा धर्म बड़ा, तुम्हारा धर्म छोटा, इस उक्ति में धर्म प्रेम नहीं है—अहंकार है। अगर कोई प्यासा इस बात पर वादविवाद करे कि तुम्हारे गांव का तालाब तो दो कोस का ही है जब कि मेरे गांव का तालाव चार कोस का है, इसलिए तुम्हारे तालाब से मेरा काम कैसे चलेगा? तब मैं कहूंगा—पागल, यह तो बता कि तेरे हाथ का घड़ा कितने कोस का है? दो कोस के तालाब से तुझे अपने घड़े भर पानी मिल सकता है कि नहीं?

मनुष्य जितना कंगाल है उससे ज्यादा दम्भी है, इसीलिए अहंकार की पूजा के लिये वह धर्म का सहारा लेता है। हरएक आदमी धन का अहंकार नहीं कर सकता, दुनिया में एक से एक बढ़कर धनी पड़े हैं और धन का क्या ठिकाना—आज है कल नहीं है, तब उसके सहारे अहंकार कैसे खड़ा किया जा सकता है। बल और रूप की भी यही दशा है। दो दिन बुखार आ जाय सारा बल निकल जाय, गाल पिचक जाय, बुढ़ापा भी बल और रूप का दिवाला निकाल देता है, फिर बल और रूप भी एक से एक बढ़कर हैं। अधिकार आदि की भी यही दशा है। मनुष्य ठहरा अहंकार का पुतला, उसे कुछ न कुछ चाहिए अवश्य, जिसके सहारे वह अहंकार कर सके। इसके लिये धर्म उसे सबसे अच्छा मालूम हुआ। इस आत्म-वंचक मनुष्य ने सोचा-धर्म का अहंकार सबसे अच्छा, इससे बड़प्पन की लालसा भी पूरी हो गई और ईश्वर या अल्लाह भी खुश हो गया, परलोक सुधर गया और स्वर्ग या जन्नत के लिए सीट भी रिजर्व हो गई।

बेचारे ने यह न सोचा कि अहंकार, चाहे वह धन का हो या धर्म का, मनुष्य का पतन ही करेगा। वह उसी तरह हमारे जीवन को जलायेगा, जिस प्रकार दुनिया का कोई भी अहंकार जला सकता है। चन्दन के ठंडा होने पर भी चन्दन की आग ठंडी नहीं होती, धर्म ठंडा होने पर भी धर्म का अहंकार ठंडा नहीं होता। अहंकार हमें जलता है, उसमें धर्म का अहंकार तो सबसे बुरा है यह तो पानी में लगी आग है। कलकत्ते में आग लगे तो बुरा होगा, पर यदि गङ्गा में आग लगे तो यह उससे भी ज्यादा बुरा होगा, क्योंकि कलकत्ते की आग गङ्गा से बुझाई जा सकती है पर गङ्गा की आग किससे बुझाई जायगी?

दुनिया के पाप को हम धर्म से साफ करते हैं, पर धर्म में ही अगर पाप घुस जाय, तो हम किससे साफ करें? इसलिए मैं कहता हूं कि धर्म का अहंकार सब से बुरा है। यह अहंकार निकल जाय, तो दुनिया में कितनी ही धर्म-संस्थाएँ क्यों न रहें, उनसे हमारा कोई नुकसान नहीं है, बल्कि फायदा ही है।

सारी दुनिया में अगर एक ही मजहब हो जाय, तो भी उससे लाभ न होगा, अहंकार या स्वार्थ थोड़ा-सा टुकड़ा निकालकर खून की नदियां बहाने लगेगा। यूरोप में एक ही ईसाई धर्म के माननेवाले क्या चर्चों के भेद से खून की नदियां नहीं बहाते रहे? एक मजहब बनाने की कोशिश व्यर्थ है। जरूरत है सद्भाव की। हमें एकरूपता (*Uniformity*) नहीं चाहिये, एकता (*Unity*) चाहिये।

———

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

पश्चिमकी अन्धी नकल न करो

(गुरुजी श्री गोलवलकर)

हम भारत को भारतीयता से च्युत न होने देंगे। किसी भी सात्विक वृत्ति के प्रसार को कोई रोक नहीं सकता। हमारा आदर्श भगवान् श्रीकृष्ण की सात्विक कार्यपद्धति है। भारत की प्रतिष्ठा, मर्यादा और समुज्वल परम्परा को हम लुप्त न होने देंगे। भारतीयता के सात्विक अभिमान को सजीव रखना ही हमारा ध्येय है। स्नेह और अमृत लेकर ही हम चलेंगे और यही हमारी नीति भी है।

पाश्चात्य नकल के कारण भारत के विभिन्न दलों के संघटन का आधार आर्थिक अथवा वासनामय है किंतु हमारा उद्देश्य सहिष्णुता, प्रेम तथा भारतीयता की आत्माका साक्षात्कार है। आसेतु हिमाचल तक हिंदुओं की आत्मा एक है। हमारा धार्मिक अथवा सामाजिक संघटन विशुद्ध गंगाजल के समान है जिसमें गन्दे नाले का पानी भी आकर गंगाजलमय हो जाता है।

इस देश की सबसे बड़ी कही जानेवाली संस्था के एक मान्य नेताने एक बार मुझसे पूछा कि रूस की तरह आर्थिक योजना क्यों नहीं संघ अपनाता? मैंने अपने उत्तर में बताया कि रूसका अनुकरण हमारे लिए घातक होगा। अपनी तेजस्वी परम्परा के कारण आज भारत, भारत है। अपने जीवन का लक्ष्य 'बुद्धि' न रखकर 'पेट' रखना अर्थात् पतन का अनुकरण कर पतन के गर्त में गिरना हमारा उद्देश्य नहीं। ऐसी हालत में भारतराष्ट्र रूसका अनुकरण क्यों करे? मैंने उनका ध्यान स्टालिन के इस वाक्य की ओर कि 'हमारे यश का बीज भयंकर द्वेष है, आकृष्ट किया और कहा कि अनुकरण हमारी कार्यपद्धति नहीं। जब उन्होंने मुझसे यह पूछा कि संघ किस अधिष्ठान पर खड़ा होना चाहता है तब मैंने उत्तर दिया—'अविरल प्रेम।' जिस भारतीय मर्यादाकी रक्षा युग-युगान्तरों से भारत माताकी वीर सन्तान करती आ रही है उसकी रक्षा ही हमारा कर्तव्य है। हमारा कार्यक्रम भी हिन्दू समाज के प्रति निस्सीम श्रद्धा रखना है। हमारे मनमें विभिन्न भावनाएं उत्पन्न हो ही नहीं सकतीं भारत की प्राचीन आत्मा हमारी संस्कृति को जीवित रखना और उसमें संघटन के बल पर नवजीवन संचारित करना हमारी नीति है।

जिनमें अपना पौरुष, अपनी बुद्धि और अपना संघटन नहीं वे दूसरों के पौरुष, बुद्धि और संघटन देखकर ललचाते हैं। उन लोगों में इतना आत्मबल नहीं कि अपनी परम्परा के अजस्र स्रोत से पिपासाकुल मनको तृप्त करें। हमारे जीवन की पद्धति को ही बदलने की ऐसी अस्वाभाविक चेष्टा की गयी है कि जिसकी कल्पना भी हम लोग नहीं कर सकते। आज हर बात के लिए वे लोग पश्चिम की ओर देखते हैं। रहन-सहन, विचार, बुद्धि, आचार-व्यवहार सब आज पश्चिमी रंगमें सराबोर होता हुआ नजर आरहा है। जो हमें न देखना चाहिये था, न सीखना चाहिये था, न अनुकरण करना चाहिये था, लेकिन हम वही कर रहे हैं। वासनाओं में निमग्न होकर बढ़ते जाना पश्चिमकी प्रगति का चिन्ह है। आज हमारे लोग भी उसी प्रगति के राहगीर बनते जारहे हैं। लोगों को भ्रम में डालकर उनकी भलाई का रास्ता दिखाया जाता है। जब भ्रम दूर होगा तब लोगों को पता चलेगा कि हम कहां थे और अब कहां हैं।

आज रावण की पूजा होरही है, रामकी नहीं, आसुरी दुर्वृत्तियां लोग अपना रहे हैं, देवदुर्लभ वृत्तियां नहीं। जब अपने जीवनगत तथ्य, सामाजिक सुधार, बुद्धि की परम्परा और अन्तःकरण की विशालता को देखने की आवश्यकता पड़ती है तब हम तुरंत उसी राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण को सामने रखते हैं जो अपना नहीं, पराया है, जो इस भूमि के लिए अनावश्यक और निरर्थक है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

योग का उद्देश्य।

(श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल)

योग और विज्ञान में सबसे भारी अन्तर यह है कि योग का ध्येय अतीन्द्रिय बातों को जानना है और विज्ञान का ध्येय इन्द्रियग्राह्य वस्तुओं को जानना है। यह बात भी सत्य है कि अतीन्द्रिय विषयों को जान लेने से इन्द्रियग्राह्य विषयों को भी हम जान लेते हैं, एवं योगानुभूति की सहायता से इन्द्रियग्राह्य एवं इन्द्रियातीत दोनों विषयों को जान लेना सम्भव और सहज है। तथापि योग-दर्शन का प्रधान उद्देश आत्मदर्शन करना है, इस कारण योग के करिश्मे जनसाधारण के सन्मुख अनायास उपस्थित नहीं किये जा सकते। योगी का ध्यान पार्थिव वस्तुओं की ओर नहीं रहता। योगी पुरुष संसार के सामने आकर अपनी करामात दिखलाना नहीं चाहता। कारण, उसका ध्येय आत्मदर्शन करना है, न कि करामात दिखाना। आत्मदर्शन करने के साधन का मार्ग एक विशिष्ट दार्शनिक मतवाद के साथ ओतप्रोत रूप में सम्बन्धित है। इन सब कारणों से योगी-जन लोकचक्षु के सामने आना पसंद नहीं करते। लेकिन यदि कोई व्यक्ति यथार्थरूप में जिज्ञासु बनकर इन योगियों के पास जाता है तो योगीजन भी उसे यथार्थ मार्ग दिखलाना अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

वैज्ञानिक विचारप्रणाली का मूल तत्व यह है कि बिना परीक्षा किये हम किसी बात को न स्वीकार कर सकते हैं और न अस्वीकार ही कर सकते हैं। बिना परीक्षा किये किसी बात को स्वीकार करना अथवा अस्वीकार करना अवैज्ञानिक मनोभाव का परिचय देना है। जो लोग योग की बातों पर आक्षेप करते हैं, उनको उचित है कि वे योग की बातों को लेकर परीक्षा करें। बिना परीक्षा किये आक्षेप करना कूपमण्डूकता का परिचय देना है। स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका के विद्वज्जनों के सम्मुख प्रतिस्पर्धा के साथ ललकार कर यह कहा था कि योग की बातों पर विश्वास करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ईश्वर को कोई माने या न माने, योग के सिद्धांतों को कोई स्वीकार करे या न करे, विश्वास करने या न करने से कुछ विशेष आता-जाता नहीं, योग का दावा है कि योग के मार्ग पर चलने से अपने-आप सबको प्रतीत हो जायगा कि योग की बातें सत्य हैं अथवा निराधार। हमारे परम सौभाग्य से आज भी हमारे देश में ऐसे योगीपुरुष वर्तमान हैं जो योग में कही हुई बातों की सत्यता का प्रमाण दे सकते हैं।

योग-दर्शन का मूलतत्व यह है कि एकाग्र मनःशक्ति की सहायता से एवं यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि साधन और क्रियाओं से व्यक्ति अपनी क्रमोन्नति को असम्भावनीय रूप में आगे बढ़ा सकता है। मनुष्यों की इन्द्रियां ज्ञान प्राप्त करने का साधन हैं। हमारी इन्द्रियों की शक्ति सीमित है, इस कारण हमारा ज्ञान भी बहुत संकीर्ण एवं अपूर्ण है। वैज्ञानिक जगत् में यन्त्रों के आविष्कार से हम अपनी इन्द्रियों की शक्ति को अभावनीय रूप में बढ़ा लेते हैं। इस प्रकार मनुष्यों को यन्त्रों का व्यवहार करने की शक्ति खूब प्राप्त हो जाती है। एवं बाह्य प्रकृति पर हम बहुत प्रभुत्व करने लगते हैं। लेकिन मनुष्य इस प्रकार से अपनी प्रकृति पर विशेष प्रभुत्व नहीं कर पाता। योग–साधन से मनुष्य अपनी प्रकृति पर भी प्रभुत्व स्थापित कर लेता है और बाह्य प्रकृति पर भी। योग-साधन की सहायता से मनुष्य अपनी इन्द्रियों की शक्ति को सर्वथा रूपान्तरित कर लेता है। अपने व्यक्तित्व को रूपान्तरित करके विश्व संसार को भी मनुष्य अनिर्वचनीय रूप में देख पाता है। योगसाधन के परिणामस्वरूप मनुष्य की जैविक क्रमोन्नति (*Biological evolution*) बहुत शीघ्र सम्पन्न होती है। साधारण प्राकृतिक नियमों के अनुसार

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

भी जीवों की क्रमोन्नति हो रही है। इसका क्रम इतना धीमा है कि सहस्र वत्सरों में भी उन्नति का परिमाण पकड़ा नहीं जा सकता। लेकिन योगसाधन की सहायता से इस उन्नति के क्रम को हम इतना तीव्र कर सकते हैं कि शत-सहस्र वत्सरों का काम हम दस-बीस साल में ही कर ले सकते हैं। इन बातों का सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि योग के मार्ग को अवलम्बन करके कोई भी मनुष्य इन सब बातों की परीक्षा कर सकता है। योग की सहायता से कोई भी व्यक्ति अपनी प्रकृति को रूपान्तरित कर सकता है।

आधुनिक मनोविज्ञान की द्रुत उन्नति के कारण आज वैज्ञानिकों को प्रतीत होने लगा है कि मनुष्यों में इतनी छिपी हुई शक्तियां हैं जिनके प्रयोग के बारे में हम अभी कुछ भी नहीं जानते। इतना अवश्य समझा जाने लगा है कि एकाग्र मन की शक्ति प्रबल है। वैज्ञानिक आविष्कार के मूल में भी एकाग्र मनःशक्ति ही काम देती है। सर्वोपरि इस बात में कोई सन्देह नहीं कि प्रकृति के रहस्य का उद्घाटन करने में एकाग्र मनःशक्ति को छोड़कर और कोई साधन ही नहीं है। योग का रहस्य भी मनःशक्ति को एकान्त रूप में एकाग्र करने की प्रक्रिया में निहित है। वैज्ञानिकगण भी मनःशक्ति को एकाग्र करते हैं, लेकिन उस एकाग्र करने की प्रक्रिया को वे नहीं जानते। आइन्स्टाइन, प्लांक इत्यादि बड़े-बड़े धुरन्धर वैज्ञानिकों ने इस बात को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि वैज्ञानिक खोज के मूल में एकाग्र मनःशक्ति ही फलवती है।

मनःशक्ति की खोज करने वाले विचक्षण पण्डितगण आज पाश्चात्य देश में भी इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि इन्द्रियों की सहायता न लेकर भी मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है। (देखिये '*Extra sensory perceptions*', '*New Frontiers of the Mind*', *etc. by Dr. Rhine and* '*Mental Radio*' *by Upton Sinclair*, '*Man the Unknown*' *by Dr. Alexis carrel*, '*psychical Research*' *by Barrett* इत्यादि ग्रन्थ)।

कुछ अनुभूतियां ऐसी भी होती हैं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। बल्कि यह कहना और अधिक सत्य है कि किसी भी अनुभूति को भाषा की सहायता से व्यक्त नहीं किया जा सकता। गुड़ का आस्वादन करके हम दूसरे को नहीं समझा सकते कि गुड़ का स्वाद कैसा होता है। दूसरों को गुड़ चखा कर ही हम बता सकते हैं कि गुड़ का स्वाद कैसा है। मीठा, कडुआ इत्यादि शब्दों के भावों को हम तभी ग्रहण कर सकते हैं जब हम उन भावों को अपनी अनुभूति में लावें। जिस व्यक्ति ने जीवन में कभी किसी मीठी वस्तु का स्वाद न लिया हो उसे कोई कैसे समझावे कि मीठा क्या वस्तु है? जो व्यक्ति जन्म से अंधा है उसे कोई कैसे समझावे कि प्रकाश क्या वस्तु है? इसी प्रकार योगियों के अनुभूतिगम्य ज्ञान को दूसरों को बोधगम्य कैसे कराया जा सकता है, जब तक कि दूसरे भी उसी समाधि अवस्था में प्राप्त ज्ञान को अपनी अनुभूति में न लावें।

जब तक वाक् संयम नहीं होता, तब तक चित्तसंयम होना कठिन है, वाक् संयम ही चित्त संयम की पूर्व अवस्था है।

\+ \+ \+

पुष्प को अपने आदर्श बनाओ उसका स्वभाव दूसरे को आनन्द देने का है, अपना स्वार्थ नहीं। वह चुपचाप फूलता है और चुपचाप ही झड़ जाता है। देवता पर चढ़ाओ तो कुछ हर्ष नहीं और विलासीके पास लेजाओ तो कुछ शोक नहीं,- सेवाही उसका धर्म है। + +

अभिमान को इस प्रकार भूल आजो जिस प्रकार गहरी निद्रा के स्वप्न को जागने पर भूल जाया करते हो। और मृत्यु को इस प्रकार याद रक्खो, जिस प्रकार दिन प्रति भोजन की याद रक्खा करते है। + +

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

कल्याण-कुञ्ज।

(श्री शिव)

———

पुराने इतिहासों, पुराणों और अन्य ग्रन्थों से पता लगता है कि किसी जमाने में मनुष्य प्राप्त भोगसुखों को छोड़कर परमात्मसुख के लिये लालायित था। उसने अपने जीवन का उद्देश्य ही मान रक्खा था आत्मा को जानना-परमात्मा को प्राप्त करना। गर्भाधानकाल से इसीके लिये तैयारी होती थी और जीवनभर इसीकी शिक्षा दी जाती थी। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—ये चार वर्ण मनुष्य के इस अन्तिम ध्येय की प्राप्ति के लिए ही बनाये गये थे और इनकी सुव्यवस्थापूर्ण पद्धति मनुष्य को क्रमशः परमात्मा की ओर ले जाती थी। शिक्षा का उद्देश्य ही था मनुष्य को पूर्ण सुख की प्राप्ति के साधन बतला देना!

समय ने पलटा खाया, मनुष्य की दृष्टि नीचे उतरी, ध्येय पदार्थ नीची श्रेणी का हो गया, अब तो यहां तक हुआ कि भोगसुख ही जीवन का लक्ष्य समझा जाने लगा। अपना सुख या देशका सुख—जो छोटे दायरे में है, वह अपने सुख के लिए यत्नवान् है, जो बड़े दायरे में है वह देश के सुख के लिये चेष्टा कर रहा है, इसके अन्दर भी निज सुख की इच्छा तो छिपी है ही। फिर उस सुखका स्वरूप क्या है? खूब धन हो, सम्मान हो, सत्ता हो, अधिकार हो, प्रभुत्व हो। इनकी प्राप्ति के लिये चाहे जिस साधन का प्रयोग करना पड़े, चाहे जिस उपाय से काम लिया जाय, झूठ, कपट, छल, द्रोह, हिंसा किसी के लिये रुकावट नहीं, काम होना चाहिये, सफलता मिलनी चाहिए। आश्चर्य तो इसी बात का है कि मरण-धर्मा मनुष्य दूसरे को लूटकर, मारकर स्वयं सुख-शान्ति से (!) जीना चाहता है।

परन्तु क्या किया जाय! विद्यालय, विश्वविद्यालय, आश्रम, मठ, मन्दिर, सभी जगह यही शिक्षा मिल रही है, बस, धनवान बनो, अधिकार प्राप्त करो, सत्ता लाभ करो, इस लोक का सुख ही सुख ही सुख है, यहाँ का अधिकार ही जीवन का लक्ष्य है, यह न हुआ तो जीवन वृथा गया! परिणाम प्रत्यक्ष है। आज चारों ओर अधिकार की लड़ाई शुरू हो रही है, लोगों के जीवन दुःख-मय बन गये हैं, कोई अधिकार प्राप्ति के लिये व्याकुल है तो कोई अधिकार-रक्षा के लिए। क्या कहा जाय! हमारा तमाम जीवन ही बाह्य हो गया, बाह्य वस्तुओं के लिये—इन्द्रिय-भोगों के लिये बिक गया। मांस के टुकड़ों के लिए चील-कौओंकी-सी लड़ाई होने लगी।

किसी जमाने में परमात्मा की प्राप्ति के लिए तप होते थे। आज भोगों की प्राप्ति के लिये होते हैं! कभी भगवान् के प्रति आत्मसमर्पण होता था, आज भोगों की प्रतिमा पूजी जाती है! कभी देहात्मबोध छोड़कर ब्रह्मात्मबोध किया जाता था, अब ब्रह्मात्मबोध की अनावश्यकता समझी जाकर उस मार्ग के पथिकों को भी देहात्मबोध की शिक्षा दी जाती है! बड़े-बड़े मनीषी, तपस्वी, संयमी पुरुष भी आज भोगों की प्राप्ति करने-कराने के लिये जीवन की और धर्म की बाजी लगाये बैठे हैं, और इसीको धर्म समझा जारहा है! इस भोगपरायणता—इन्द्रियसुखपरताका परिणाम क्या होता है? मनुष्यों में राक्षसी भावों का उदय, द्वेष-हिंसा-प्रतिहिंसा का प्राबल्य, घोर अशान्ति और सुख के नाम पर दुःखपूर्ण जीवन-यापन!

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भोगसुख और भौतिक सत्तासामर्थ्य से सम्पन्न समुन्नत कहाने वाले देशों की भीतरी दशा है। परन्तु इस दशाको भी देखना होगा ईश्वराभिमुखी ज्ञानसम्पन्न ऋषि-नेत्रोंसे, हमने ये नेत्र खो दिये, कम से कम हमारे इन नेत्रों पर जाले छा गये, इसीसे हम विपरीत-दर्शी हो रहे हैं। यहां की सभी बातें हमें अच्छी लगती हैं चाहे वह बुरी से बुरी हों, ऐसा जादू

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

छाया है कि इसने हृदय को ही 'पथराया' बना दिया। इसीके परिणामस्वरूप आज हम यहांके अनाचारमें सदाचार, पाप में पुण्य, स्वार्थान्धता में देशभक्ति, अवनति में उन्नति, अधर्म में धर्म और पतन में उत्थान का विपरीत दृश्य देख रहे हैं, और सब ओर इसीके प्रवर्त्तन की अन्धचेष्टा में तत्पर हैं।

जहां सुख है ही नहीं, वहां सुखको खोजना वैसा ही है जैसा तप्त मरुभूमि में जल समझ कर भटकना। भगवान् श्रीकृष्ण ने तो इस जगत् को 'अनित्य' और 'असुख' अथवा 'दुःखालय' और 'अशाश्वत' बतलाया है। और इसके प्रत्येक पदार्थ में 'जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि' रूप दुःख-दोष देखकर इससे वैराग्य करने की आज्ञा दी है और वैसा बनकर ही जगन्नाटक के सूत्रधार भगवान् के आज्ञानुसार अपने-अपने स्वांग के अनुकूल अभिनय करने को निष्काम कर्म बतलाया है। आज हम भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा मान कर लड़ने-मरने को तो प्रस्तुत हैं परन्तु भोगेच्छा छोड़कर वैराग्य ग्रहण करने के लिए जरा भी तैयार नहीं। फलस्वरूप निष्काम कर्मयोग के स्थान पर विकर्म-पापकर्म होते हैं—भोगसुखेच्छा से प्रेरित होकर राग-द्वेषवश किये जाने वाले असत्य, कपट और हिंसायुक्त कर्म पाप न होंगे तो क्या होंगे? पापका फल दुःख होता ही है, उसीका भोग भी हम खूब भोग रहे हैं। आश्चर्य और खेद तो यह है कि गीताकी दुहाई देकर आज मनमाने आचरण किये जा रहे हैं।

आज जो कुछ हो रहा है इसके अधिकांश में न ज्ञान है, न निष्काम कर्म है और न भक्ति है। ज्ञानमें प्रधान बाधा है देहाभिमान की, सो उसको खूब बढ़ाया जा रहा है। निष्काम कर्मयोग में प्रधान बाधक है स्वार्थबुद्धि। जिसकी वृद्धि के लिये प्रत्येक सम्प्रदाय और दल औरों के साथ संगठित हो रहे हैं, और भक्ति में प्रधान प्रतिबन्धक है शरणागति में कमी—भगवान् पर पूर्ण निर्भर न होना, सो यह भी प्रत्यक्ष ही है। सच्चा ज्ञानी सच्चा निष्काम कर्मी और सच्चा भक्त कभी छल, कपट, दम्भ, असत्य, अन्याय और हिंसा आदि का अवलम्बन नहीं कर सकता।

क्योंकि ज्ञान के साधन में देहात्मबुद्धि का—शरीर में 'मैं' बुद्धिका त्याग करना पड़ता है, उसके लिये आत्मा शरीर से उसी प्रकार अलग है, जिस प्रकार दूसरे शरीरों से हमारा शरीर। यह स्थिति प्राप्त होने पर अर्थात् देहात्मबुद्धि के छूट जाने पर पापकर्म नहीं बन सकते। इसी प्रकार स्वार्थबुद्धिके परित्याग हो जाने पर ईश्वरार्थ किये जाने वाले निष्काम कर्म भी पापयुक्त नहीं हो सकते और भगवद्भक्ति में तो मनुष्य भगवान् के शरण ही हो जाता है, उस अवस्थामें उसके दूषित भावों का त्याग स्वाभाविक ही होता है। जहां दुष्कर्म होते हैं, सफलता के लिए शास्त्र-विरुद्ध कर्मों का, पापों का आश्रय लिया जाता है, वहां ज्ञान, निष्काम कर्म और भक्ति स्वप्न देखना मोहमात्र है।

इस मोहका भङ्ग होना आवश्यक है, परन्तु हो कैसे? अज्ञानजनित भोगलोलुपताके अन्धकार हमारे ज्ञान को ढक लिया है और चारों ओर से इस अन्धकार को और भी घना करने का अथक प्रयत्न हो रहा है। इस अन्धकार की घनता को ही ज्ञानका प्रकाश कहा जाता है। मनुष्यकी बुद्धि आज उल्लू और चमगादड़ की दृष्टि-जैसी हो गयी है, जैसे इन पक्षियों को दिन में अँधेरा और रात को प्रकाश दीखता है, वैसे ही हमें भी आज अन्धकार में ही प्रकाश का भ्रम हो रहा है, इसीसे हम 'कामोपभोगपरायण' होकर सैकड़ों आशा की फांसियों में बँधे हुए काम-क्रोधादि साधनों से 'कामभोगार्थ' 'अन्यायपूर्वक अर्थप्राप्ति' के उपायों में लग रहे हैं। मोहने हमें घेर लिया है। अभिमानने हमें अन्धा कर दिया है। लोभ ने हमारी वृत्ति को बिगाड़ दिया है। मदने हमें उन्मत्त बना दिया है। इसीसे आज हम 'अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध, का आश्रय लेकर 'सर्वभूतस्थित' भगवान् के साथ द्वेष करने लगे हैं।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

इन आसुरी भावों का परिणाम नरक की यन्त्रणाएँ और अधम गति के सिवा और क्या हो सकता है?

उपाय क्या है? उपाय है—भगवदाराधन! जिन लोगों को भगवान् में कुछ भी विश्वास है वे सबकी ऐसी बुद्धि होने के लिये भगवान् से सरल-श्रद्धायुक्त अकृत्रिम प्रार्थना करें। उठते हुए भगवद्विश्वासको अपने शुभ आचरण और सच्ची भक्ति के द्वारा फिर जमावें। भगवत्-श्रद्धा के सूखते हुए वृक्ष की जड़को सच्ची निर्भरता की अश्रुजल-धारा से सींचें। आप्त वचनों पर श्रद्धा करें। ऋषि-मुनियोंको भ्रान्त मानना छोड़ दें। जीवनको तप-संयम से पूर्ण बनाकर भगवत्कृपा का आश्रय ग्रहण करें। अटल विश्वास तथा परम श्रद्धा के साथ भगवान् के चरणों की सेवा करें और उनके पवित्र नामका जप करें।

मनुष्यको सावधान होकर यह सोचना चाहिये कि यहां सभी भोग-सुख अनित्य हैं, बिजली की भांति चञ्चल हैं। शरीर कच्चे घड़े के समान अचानक जरा-सी ठेस लगते ही नष्ट हो जाने वाला है, इसलिए भोगों से मन हटाकर भगवान् में प्रेम करें। भगवान् के लिये ही जगत् के सारे कारे कार्य करें। जगत् के लिये भगवान् को कभी नहीं भुलाया जाय। भगवान् के लिए जगत् को छोड़ना पड़े तो आपत्ति नहीं, परन्तु जगत् के लिये भगवान् कभी न छूटें। यदि मनुष्य इस प्रकार निश्चय कर ले तो फिर जगत् के छोड़ने की भी जरूरत नहीं पड़ती, सारा जगत् भगवन्मय ही तो है।

पापी से घृणा मत करो, उसके पापों से घृणा करो। पापी की निन्दा मत करो, उस के पापों की निन्दा करो। पापी को निकालो मत, उस के पापों के निकालने का प्रयत्न करो। यह तभी होगा जब कि उससे प्रेम करोगे—उसे शिक्षा दोगे और उसे शुद्ध सत्संग में रखने का उपाय करोगे।

\+ \+ \+

बुद्धि विकास का साधन।

(प्रोफेसर नारायण गोविन्द नाबर)

आत्मा में जो अभयादि शक्ति निवास करती हैं, उसको जाग्रत करने वाला साधन मन ही है। इसलिए मन को विशाल बनाकर अधिक सामर्थ्य-शाली बनाने की आवश्यकता है। यदि वह कमजोर होगा तो सामर्थ्य को जाग्रत नहीं कर सकेगा।

चैतन्य सर्व व्यापी है, प्रत्येक मनुष्य उसका अंश है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का अंश माना जाता है। यह भावना सदा जाग्रत रखनी चाहिए। "मेरे लिए कोई बात असम्भव नहीं"—यह वाक्य हृदय पटल पर मुद्रित करके उसके अनुसार चलना अत्यन्त आवश्यक है। अपने शरीर के आन्तरिक भाग में शान्ति रख कर उस भाग में प्रवेश कर वहां के निष्क्रिय कम्पन को अपने सामर्थ्य से जागृत करना चाहिए।

दूसरी बात समस्त प्राणी मात्र के प्रति प्रेम भाव धारण करना चाहिए। मानसिक शक्ति के विकास के लिए प्रेम का बहुत उपयोग होता है। सर्व व्यापी चैतन्य के यदि हम एक अंश हैं तो क्या प्रेम भी सर्वव्यापी न होना चाहिए? समस्त भूतमात्र में परमेश्वर व्याप्त है, इसलिए यह बात ध्यान में रख कर यदि ऐसी ही भावना करोगे, तो अन्य विकास होने में अधिक समय न लगेगा।

शरीर व मन के प्रत्येक अणु अणु में सामर्थ्य भरी है। जब उसका उपयोग होगा, तभी वह जाग्रत भी होगी। स्वयं काम कीजिए, स्वयं सोचिये। प्रत्येक परमाणु को जाग्रत करना अत्यन्त आवश्यक है।

चौथा महत्वपूर्ण साधन मन और विचार में पूर्ण एकता होनी चाहिए। व्यवहार एक तरह का, भाषण दूसरी तरह का, व्यवहार और तथा मन में और—ऐसा असामंजस्य बुद्धि को ढीला करता है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

प्रेमधर्म की शिक्षा।

(श्री राजा महेन्द्र प्रताप)

प्रेम-धर्म तुम्हें धार्मिक कर्त्तव्यों को बताकर बुराइयों से रोकता है। वह यही शिक्षा देता है कि केवल एक-मुझको ही सर्वत्र देख-समझकर और यह जानकर कि केवल एक परमात्मा ही सब कुछ है, तथा सर्वोच्च धार्मिक पारितोषिक-प्राप्ति के प्रति सच्चा और विशुद्ध प्रेम रखकर ही तुम सर्वोच्च प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हो। अनुचित अहंकार व इन्द्रियलोलुपता द्वारा लोग मान और धन-दौलत की महत्वाकांक्षा तथा झूंठे प्रेम में फँस जाते हैं, वे दुष्टता में निम्नश्रेणी की प्रसन्नता प्रकट करते हैं, मानव को अभिमान सिखाते हैं, लोगों को झूँठ बोलने को प्रोत्साहित करते हैं, मानव को डाह और द्वेष करना बताते हैं, और जब कोई निराश होता है या उसकी इच्छा के मार्ग में कोई बाधा उपस्थित होती है तो यह केवल अहंत्व या इन्द्रिय-लोलुपता से ही होता है कि क्रोध या निराशा उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य लड़ने, लूटने, बलवा करने, मार-काट करने, आत्महत्या करने या ऐसे ही अन्य कुर्मों की ओर प्रवृत्त होता है। और मान या धन-दौलत की महत्वाकांक्षा ही धोखा-धड़ी, चोरी, लूटपाट आदि बुराइयों की जड़ है।

प्रेम-धर्म तुमको यह बतलाता हुआ कि तुम परमात्मा के अंश हो, यह समझाता है कि तुम्हारे लिये बुराई करना भारी गलती है और तुम ऐसा करने से परमात्मा के शत्रु हो सकते हो, या उसे कष्ट पहुंचाते हो। यह तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम परम पावन पूर्ण परमात्मा को समझो—उसे ही विश्व का ध्रुव सत्य जानो। तुम्हें सबके प्रति प्रेम करना चाहिये। अपने स्वास्थ्य को ठीक रखकर और अपने दैनिक ज्ञान को उन्नत करते हुए तुम्हें सदैव मानवसमाज की सेवा में रत रहना चाहिए। और फिर तुम्हें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि अकेले तुम कुछ नहीं हो, कारण कि केवल एक परमात्मा—अकेला परमात्मा ही है। तुम्हारे प्रत्येक विचार और कार्य का मुझ पर प्रभाव पड़ता है। और सदैव विश्वास करो कि व्यभिचार या परस्त्री-गमन एक घोर पाप है और यह मत भूलो कि बीज केवल बच्चे पैदा करने के लिए है।

न्याय, सत्यता, दया, क्षमा आदि के अनुसार विचार और कर्म करो। सबके अधिकारों को समान मानो। दूसरों का लाभ देखकर प्रसन्न होओ। दूसरों की अनुचित हानि देखकर अपने मनमें दुःख का अनुभव करो। दूसरों को अपना निजी भाई समझ कर उनमें विश्वास रक्खो और जो कुछ तुम वायदा करो, उसे अवश्य पूरा करो। सबके प्रति नम्र बनो। किसी को कष्ट में देखकर उसकी सहायता करो। सदैव सहिष्णु बनो। अपने कष्ट का अनुभव न करो। कुछ हद तक तुम्हें गाली-गलौज और क्रोध को सहना चाहिए धर्म के अनुसार कार्य करते हुए निडर रहो। और अपने मन को सदैव प्रसन्न रक्खो। धन को भगवान की धरोहर मानकर उसके कोठारी के रूप में उसे उचित ढंग से व्यय करो। धर्मार्थ दान अवश्य करो। किसी दशा में भी अधिक या कम व्यय न करो। तुमको धार्मिक सिद्धान्त और आदेशों का सदैव स्मरण रखना चाहिए। तुमको हरेक से और प्रत्येक वस्तु से सीख सीखनी चाहिये। तुमको अपने मन को एक विषय पर एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिये।

तुमको किसी भी काम को कभी अधूरा न छोड़कर उसे पूरा करना चाहिए। तुम्हें दूसरो को अपने ज्ञान और अनुभव से लाभान्वित करना चाहिए। नित्य प्रार्थना करो। समय का लेख रक्खो। प्रेमपूर्ण आराधना करो। सदैव प्रेम का शब्द पढ़ना जारी रक्खो। प्रेम केन्द्र में जाते रहो। तीर्थयात्रा करो। पवित्र स्थानों को देखो और भ्रमण करो। अच्छे लोगों का संग करो अच्छे विषय पढ़ो और लिखो। अच्छे आदमियों

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

श्रम से जी न चुराओ।

इतिहास इन सब बातों की साक्षी देता है कि सच्चे सत्पुरुष काम करने से नहीं डरे न डरते हैं। कार्य ही उनके जीवन का ध्येय है। श्री कृष्णभगवान् ने इसी बात का उपदेश किया है। 'कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि' 'कर्म को ब्रह्म से पैदा हुआ जानो' तस्मादसक्तःसततं कार्य कर्मसमाचार। असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः" इस लिये जो असक्त कर्म करना चाहिये वे असक्त होकर किया करो। जो असक्त होकर कर्म करता है वह परम पद को प्राप्त कर लेता है।" सांसारिक दृष्टि से इस प्रकार कह सकते हैं कि क्लेश का, दुख का, लज्जा आदि का विचार न करके अपने उचित कर्म करने से बड़प्पन प्राप्त होता है। 'कर्मणै वेहि संसिद्धिमास्थिताजनकादयः—'

कर्म से ही जनकादि महापुरुषों ने उत्तम गति प्राप्त की है फिर ख्याल रखो "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते" । इसके उदाहरण प्रत्येक घर में मिलते हैं। उसी मालिक का काम अच्छा होता है जो स्वयं भी काम करने लगता है। यदि तुम्हारा नौकर आलसी हो और काम न करे तो पहिले तुम काम करने लग जाओ। आलसी मालिक के नौकर भी आलसी होते हैं। श्रेष्ठ पुरुष जो कुछ करते हैं, उसी का अनुकरण और लोग भी करते हैं। श्रेष्ठ पुरुष जिस बात को उचित समझता है उसी को और लोग भी करने लगते हैं। यह तत्व बिल्कुल शब्दशः ठीक है। मालिक होकर जिस कार्य को तुम अयोग्य समझो उसे नौकर क्यों करे? परन्तु तुम्हें अपना कार्य करने के लिए तत्पर देखकर दूसरे लोग तुम्हारा काम थोड़े पैसे लेकर ही देने को तैयार हो जाते हैं।

रेलवे स्टेशनों पर इस बात का खूब अनुभव प्राप्त होता है। पहिले यदि कुली को सामान लेचलने को कहो तो वह चार पैसे की जगह चार आने मांगेगा। यदि तुम अपना असबाब उठा कर ले जाने लगोगे तो फिर तीन ही पैसे में राजी हो जावेगा। भगवान् और भी कहते हैं "हे अर्जुन! इस त्रिभुवन में मुझे करने के लिए कुछ भी नहीं बचा है, न मुझे कोई अप्राप्त वस्तु प्राप्त करना है। परन्तु यदि मैं आलस्य छोड़कर कर्म न करता रहूं, तो सब लोग मेरा ही अनुकरण करेंगे, यानी आलसी हो जावेंगे।" 'अन्त में परिणाम यह होगा कि मेरे हाथ से सब प्रजा नष्ट हो जायगी'। परमेश्वर का अस्तित्व मानने वाले यदि परमेश्वर का अनुकरण न करें तो वे भी नास्तिक ही हैं। परमेश्वर रात दिन काम करता रहता है तुम भी करो। यही परमेश्वर की पूजा है, यही परमेश्वर का भजन है और इसी तरह से परमेश्वर का मनन होगा।

और अच्छी चीजों का स्मरण करो। यदि किसी कारणवश तुमसे कभी कोई बुराई बन जाय, यदि कभी तुम से धर्म के विपरीत कोई कार्य हो जाय, तो तुम्हें तुरन्त उसके लिए क्षमा मांग लेनी चाहिये और वैसी बुराई भविष्य में न करने का संकल्प करना चाहिये। केवल एक अपनी आत्मा से नेक बनने की सहायता मांगो।

यदि तुम ऐसा करते रहोगे, और सदैव यह विश्वास रक्खोगे कि मैं सर्वत्र हूं, उजेले व अँधेरे में—भीतर व बाहर—सभी स्थानों पर मैं हूं—मैं सदैव ही तुम्हारे मन की भावना को देखता रहता हूं,जो कुछ भी किसी स्थान पर तुम करो—मैं उसे जानता हूं। यदि इन बातों को स्मरण रखते हुए तुम धर्म की शिक्षाओं का पालन करते रहोगे, उस दशा में न तो तुम धर्म के अनुसार पापी ही हो सकोगे और न सामाजिक कानूनों के अनुसार कोई जुर्म ही कर सकोगे। तुम भविष्य में प्रसन्न रहोगे और मुझे भी प्रसन्न रक्खोगे।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

मेरी डायरी के पृष्ठों से-

(डा० गोपालप्रसाद 'वंशी', वेतिया)

प्रत्येक चमकदार वस्तु सोना नहीं है।

\+ + +

दुनिया की निन्दा-स्तुति के भरोसे चलने वाले की मौत है। अपने हृदय पर हाथ रखकर चल। + +

ब्रह्मचर्य का अर्थ है-मन, वचन और काया से समस्त इन्द्रियों का संयम। ✪

यदि आप विवाहित हैं तो याद रखिये कि आपकी स्त्री आपकी मित्र, सहचरी और सहयोगिनी है, भोग विलास का साधन नहीं।

✪ ✪ ✪

आत्मसंयम के जीवन के नियम भोगविलास के जीवन से अवश्य भिन्न होने चाहिये। इस लिए आपको अपना संग, अध्ययन, मनोरंजन के स्थान और भोजन को संयमित करना चाहिये। ✪ ✪

भोगी पुरुष खाने के लिए जीता है, संयमी पुरुष जीने के लिए खाता है। ✪

ईश्वर की महत्ता और प्रेम प्रदर्शित करने के लिए मनुष्य परमात्मा का प्रतिनिधि है। सेवा कार्य आपका एक मात्र सुख है। ✪ ✪

मुहब्बत त्याग की मां है, जहां जाती है, बेटी को साथ ले जाती है। ✪ ✪

जब तक मेरी निन्दा और टीका होती रहती है, तब तक मैं बेखटके सोता हूं, जब प्रशंसा के पुल बँधने लगते हैं तब मुझे चिन्ता के साथ जागना पड़ता है। ✪ ✪

तू स्वयं अपनी परिस्थिति का स्वामी है। जिस परिस्थिति में तूने जन्म पाया है, वह भी तेरी ही कृतियों से प्राप्त हुई है। ✪

दूसरों की शिकायत करने के बनिस्बत अपनी शिकायत करने में अधिक बल और बहादुरी की जरूरत होती है। ✪ ✪

मानव चरित्र की एक विचित्रता यह है कि हम बहुधा ऐसा काम कर डालते हैं, जिन्हें करने की हमें इच्छा नहीं होती। कोई गुप्त प्रेरणा हमें इच्छा के विरुद्ध हो जाती है।

✪ ✪ ✪

उन्नत हृदयों में सौन्दर्य्य उपासना-भाव को जाग्रत कर देता है, वासनाएँ विश्रान्त हो जाती हैं। ✪ ✪ ✪

बुद्धि का फल यह न होना चाहिये कि हम दूसरों के दोष देखते रहें, उन्हें जतन से संभाल कर रखते रहें। बल्कि यह होना चाहिये कि गुण अधिक देखे जायँ और उन्हें संग्रह किया जाय।

✪ ✪ ✪

मेरी राय में केवल दो ही उद्देश्यों से लिखना-पढ़ना आवश्यक है। एक तो मनुष्यता को समझने और उसका विकाश करने के लिए, दूसरा जीबिकोपार्जन के लिए। ✪

यदि तूने स्वार्थ को अपने हृदय में से निकाल डाला है तो फिर तुझे संसार में किसी से डरना और दबना न पड़ेगा। ✪ ✪

यदि तेरी आत्मा निर्भय है तो तुझे तलवार बांधने की क्या जरूरत है? और यदि तूने मृत्यु के भय को जीत लिया तो फिर संसार में कोई भय तुझे परास्त नहीं कर सकता। ✪

तुम किताबों को नहीं, मनुष्यों को पढ़ो। दूसरों के साथ-साथ अपने को भी पढ़ो।

✪ ✪ ✪

प्रेम उत्सुक होता है, ज्ञान विरक्त। प्रेम के लिए रस है, आनन्द है। ज्ञानी के लिये मनोरंजन है, खेल है। प्रेम डूबता रहता है, ज्ञान तैरता रहता है। ✪ ✪

यदि तेरे जीवन का कोई आदर्श नहीं है, कोई सिद्धान्त नहीं है, कोई महत्वाकांक्षा नहीं है, तो संभव है कि तू संसार की कड़ी परीक्षाओं से बच जाय, किन्तु याद रख तू उसकी प्रताड़नाओं से किसी प्रकार नहीं बच सकता।

✪ ✪ ✪

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

आत्मोन्नति के तीन साधन।

(ले० अगरचन्द्रजी नाहटा, सिलहट)

प्रत्येक प्राणी उन्नति का इच्छुक है पर उन्नति का सही मार्ग समझपाना कठिन है और उससे भी कठिन है उसको आचरण में लाना। कोई व्यक्ति कहीं जाना चाहता है या कुछ प्राप्त करना चाहता है तो उसका मार्ग एवं साधनों को जानना आवश्यक होता है, पर जान लेने से काम नहीं चलेगा। हमें कलकत्ते जाना है उसका मार्ग भी मालूम होगया पर जहां तक उस मार्ग पर चलेंगे नहीं,हम कलकत्ता पहुंच नहीं सकते। उसी प्रकार आत्मा के सद्चिदानंद स्वरूप का ज्ञान व स्वरूप प्राप्ति के लिए साधन एवं उनको अपना वें-आचरित करने की परमावश्यक्ता है।

एक ही जगह पहुंचने के लिए मार्ग अनेक होते हैं जिसके लिए जो सुविधाजनक हो वह उसीका अनुसरण कर साध्य को प्राप्त कर सकता है साधन की विविधता-अनेकता के लिए झगड़ा अर्थात् योग्यता एवं परिस्थिति की विषमता के कारण कोई सुगम मार्ग को अपना लेता है कोई दुर्गम में जाने को तैयार हो जाता है इससे पहुंचने में देरसवेर-आगे पीछे हो सकता है पर मार्ग सही है, लक्ष्य ठीक है और गति होरही है तो पहुंच अवश्य जायगा। यह बात लौकिक एवं लोकोत्तर-आत्मोन्नति दोनों के लिए समान रूप से लागू होती है।

वैसे आत्मोन्नति के साधन अनेक हो सकते हैं पर मुझे जिनका विशेष रूप से अनुभव हुआ है उन्हीं साधन त्रय पर प्रस्तुत लेख में विचार किया जारहा है। वे हैं, सरलता समभाव और संतोष। सरलता निर्मलता है और गरलता-- वह हृदयको कलुषित करती है। अतः आध्यात्मिक गुणों के निवास के लिए पहले भूमि शुद्धि की आवश्यक्ता है। कोई भी चित्रकार जब चित्र अंकन करने बैठता है तो पहले जिस भीत, दिवाल कपड़ा या कागज पर चित्र करना है उसे शुद्ध, धब्बा रहित, खरदरेपन से रहित, साफ सुथरा व पालिसदार बना लेता है उसी प्रकार आत्मदेव की झांकी पाने के लिए सरलता रूपी चित्त शुद्धि की परमावश्यका रहती है।

सरलता का वास्तविक अर्थ-जो चीज जिस रूप में हैं उसे उसी रूप में प्रगट करना है। सत्य की एवं सरलता की सीमा बहुत कुछ मिलती जुलती है। हमारे में जो गुणदोष हैं जो विचार हैं, जो करने का इरादा है, उसे उसी रूप में प्रगट करना। दिखावे के लिये दूसरों को भ्रम पैदा करने के लिये भीतर कुछ है बाहर कुछ और ही दिखाने का प्रयत्न किया जारहा है यह कपट वृत्ति जहां है वहां अध्यात्मिकता का पौधा पनप ही नहीं सकता। बाहर भीतर एक बनो जैसा कुछ हो, जो कुछ जानते हो उसको अन्यथा रूप में दिखलाने का प्रयत्न नहीं करो। व्यवहार में हो सकता है इससे कुछ नुक्सान प्रतीत हो पर वास्तव में जो पराये को धोखा देता है वह अपने को पहले धोखा देता है। जहाँ निर्मलता नहीं कलुषितता है वहाँ अन्य सद्गुणों का आगमन, एवं विकाश असंभव ही समझिये।

इसके पश्चात् समभाव की आवश्यक्ता है। समभाव का वास्तविक अर्थ है राग द्वेष का परिहार। जहां क्रोध एवं द्वेष की ज्वाला धधक रही है वहां आध्यात्मिक शांति आवेगी ही कैसे ? जहां तक विषयाभिलाष धन पुत्र स्त्री परिवार आदि में मोह है वहां मनकी वृत्ति बर्हिमुखी रहती है। अन्तर्मुखी बनने के लिये बाहर का आकर्षण अच्छा एवं बुरा दोनों कम करने होंगे-हटाने पड़ेंगे। विश्व में अच्छे बुरे अनेक प्रकार के प्राणी हैं भली बुरी अनेक वस्तुएँ हैं उनमें एवं विचार वैषम्य में समभाव के द्वारा शांति प्राप्ति हो सकती है। चित्त की व्यग्रता में चंचलता,अधैर्य, उद्वेग आवेश क्रोध आदि दोषों के हटाने के लिए समभाव ही अमोघ उपाय है। समभाव के बिना वास्तविक तथ्य तक पहुंचना कठिन है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

विचारों का रंग-रुचि से संबंध

(श्री दौलतराम कटरहा बी. ए. दमोह)

स्वामी शिवानन्द लिखते हैं—"विचार एक सूक्ष्म पदार्थ है। प्रत्येक विचार का वजन, आकार प्रकार, नाप, रूप और रंग होता है। आध्यात्मिक विचार का रंग पीला होता है। घृणा और क्रोध मिश्रित विचार का रंग खूब लाल होता है। स्वार्थमय विचार का रंग खाकी होता है—इत्यादि। योगी अपनी अन्तर्दृष्टि से इन सब विचारों को देख सकता है"।

जो मनुष्य जिस प्रकृति का होता है वह उस प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाले रंगों को पसन्द करता है। पवित्रात्मा व्यक्ति पीले रंग को पसंद करता है। शुद्ध हृदय वाला व्यक्ति स्वच्छ धवल रंग के वस्त्र पसंद करता है। उदार हृदय व्यक्ति नीले रंग के वस्त्र पसन्द करता है। क्रोधी पुरुष लाल रंग के हिंसक प्रकृति का पुरुष काले रंग के और स्वार्थी पुरुष खाकी रंग के वस्त्र पसंद करता है। मनुष्य अनेकों रंग के वस्त्र पसंद करता है किंतु उसकी रुझान जिस रंग की ओर अधिक हो उसे उस रंग से सम्बन्ध रखने वाले स्वभाव वाला व्यक्ति ही समझना चाहिए उसके चरित्र में तत्सम्बन्धी विचारों की ही प्रधानता रहती है।

कुछ व्यक्ति काले के साथ सफेद अथवा लाल के साथ सफेद रंग के कपड़े पसंद करते हैं। ऐसे पुरुषों में कोई भारी विशेषता होती है जो साधारण पुरुषों में नहीं पाई जाती। सफेद कमीज के ऊपर काला अथवा लाल कोट पहिनना अथवा इसी ढंग से अन्य वस्त्र पहिनना उन्हें बहुत रुचता है।

यदि कोई पुरुष ऐसे वस्त्र अधिक पसंद करे जिसका रंग ऐसा हो जो दो मूल रंगों के मिश्रण से बनता हो तो उसमें मिश्रित भावों की प्रधानता होगी। बैंगनी रंग लाल और नीले के मिश्रण से बनता है अतएव बैंगनी रंग अधिक पसंद करने वाले व्यक्ति में क्रोध और उदारता का मिश्रण होगा।

जिस तरह हमारे विचारों का हमारी रुचि पर प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार हमारे वातावरण के रंग का हमारे विचारों पर भी प्रभाव पड़ता है। ऐसे वातावरण में रहने वाले व्यक्ति का मन जहां वृक्ष और पौधे सदा हरे भरे रहते हैं प्रसन्न और शुद्ध होता है। उसके विचार दिव्य तथा उदारता लिए हुए ही होते हैं। इस बात का पता लगाया गया है कि जब कोयले की खानों में बिजली के लाल बल्बों का प्रयोग किया जाता है तब मजदूर लोग अधिक लड़ाके हो जाते हैं। हरे नीले बल्बों का उपयोग करने पर वे शान्त और परस्पर सहयोग करने वाले होते

तीसरा साधन है संतोष। मनुष्य को कर्त्तव्य पथ से डिगाने वाली अन्याय में प्रवृत्ति करने वाली वृत्ति लोभ की है। जहां तक धन पुत्र स्त्री या किसी भी प्रकार की तृष्णा कमजोर नहीं हो जाती आध्यात्मिक भूख जागृत हो ही नहीं सकती। हमारे विचार एवं प्रयत्न, जिन जिन वस्तुओं की आकांक्षा है उसी के प्राप्ति की उधेड़बुन में चलते रहते हैं। लोभ की कोई सीमा भी तो नहीं एक मिला तो दूसरी आशा जग उठेगी। इसी लिए महापुरुषों ने कहा है कि संतोष के बिना सुख कहां? लोभ पाप का बाप है। जीवन निर्वाह के लिए धनोपार्जन प्रतिष्ठा के लिए अन्य वस्तुओं का संग्रह करना पड़ता है पर उसी में रम मत जाइये। लोभ को पहले सीमित बनाइये एवं अहिस्ते अहिस्ते फलाशा बिना कर्त्तव्य बुद्धि से प्रवृत्ति करने के गीता वाक्यों तक पहुंचने का प्रयत्न करिये। जैसी कुछ आपकी परिस्थति है उसमें असंतोष मत रखिये उच स्थानों के प्राप्ति का प्रयत्न करिये पर विवेक के साथ।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

हैं। स्वच्छ श्वेत वस्त्रों की घर में बाहुल्यता रखने से विचारों में भी स्वच्छता एवं शुभ्रता प्रवेश करती है।

हिंदुओं ने विष्णु की वेश-भूषा की जो कल्पना की है वह अत्यन्त भव्य है। वे गगन सदृश मेघ वर्ण हैं और वे पीताम्बर धारी है। हिन्दू उन्हें "सपीत वस्त्र सरसीरुहेक्षणम्" जानकर अपने हृदय कमल मध्य स्थापित करता हैं और इस तरह एक भव्य एवं शान्त मूर्ति की कल्पना उसके हृदय को भृंगी-कीट–न्याय के मुताबिक वैसा ही बनाती है। शान्तमूर्ति को देखकर किसका हृदय शान्त एवं उत्फुल्ल न होगा। महात्मा पातंजलि ने "वीतराग विषय वा चित्तम्" कहकर वीतराग एवं शान्तमूर्ति के ध्यान द्वारा चित्त का शान्त होना तो बताया ही है। और षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न भगवान् विष्णु तो वैराग्य और ऐश्वर्य दोनों गुणों से सम्पन्न हैं।

भगवान के शरीर का मेघवर्ण उनकी उदारता शरणागतवत्सलता, सुहृदता, एवं परमाश्रयता का सूचक है। वे विश्व के पालन करने वाले, सबकी गति, सबके भर्ता, प्रभु एवं निवास स्थल हैं और इन गुणों का प्रतीक उनकी दिव्य देह का मेघवर्ण है। उनका पीताम्बर उनकी परमोच्च आध्यात्मिकता का द्योतक है। इस तरह हिन्दुओं में पीताम्बरधारी विष्णु की कल्पना वैज्ञानिक ढंग से की गई जान पड़ती है।

इस लेख को समाप्त करने के पहले हम तनिक हिन्दुओं के इष्ट देव भगवान राम और कृष्ण की माधुरी छवि की ओर भी निहार लें। राम अपनी बाल्यावस्था में कैसे हैं इसका वर्णन करते हुए तुलसीदासजी लिखते हैं "नव नील कलेवर पीत झँगा, झलकें पुलकें नृपगोद लिए"। भगवान कृष्ण की भी हम पीताम्बर–युक्त छवि का ही वर्णन करते हैं। भगवान की वह छवि हमारे हृदय में तदनुकूल विचारों की प्रेरणा करती है।

सन्तों के लक्षण।

(पं० तुलसीरामजी शास्त्री, वृन्दावन)

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसता च विद्वत्प्रणामंच सुशीलताच। एतानि योधारयते स विद्वान् न केवलं यः पठते स विद्वान्।

सत्य, तप (अपने धर्म से न डिगना) ज्ञान, अहिंसा (किसी का दिल न दुखाना) विद्वानों का सत्कार, शीलता, इनको जो धारण करता है वह विद्वान् है केवल पुस्तक पढ़ने वाला नहीं।

शास्त्राण्यधीत्यपि भवन्तिमूर्खायस्तु क्रियावान् पुरुषः सविद्वान्। सुचिन्तितं चौषध मातुराणां न नाममात्रेण हरोत्यरोगम्॥

शास्त्र पढ़ कर भी मूर्ख रहते हैं परन्तु जो शास्त्रोक्त क्रिया को करने वाला है वह विद्वान् है। रोगी को नाम मात्र से ध्यान की हुई औषधी निरोग नहीं कर सकती।

अहो किमपिचित्राणि चरित्राणिमहात्मनाम्।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेणनमन्ति च॥

अहो! महात्मा पुरुषों के चरित्र विचित्र है ये लक्ष्मी को तृण समान समझते हैं यदि लक्ष्मी इन महापुरुषों प्राप्त हो जाती है तो उसके बोझ से दब जाते हैं अर्थात् नम्र हो जाते हैं।

गङ्गापापं शशीतापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापंतापंचदैन्यं च घ्नन्ति सन्तोमहाशयाः॥

गंगा पाप, चन्द्रमा ताप, और कल्पवृक्ष दरिद्रता को नष्ट करता है परन्तु सज्जन पुरुषों का संसर्ग पाप, ताप, और दीनता इन तीनों हरण करता है।

मुखेन नोद्गिरत्यूर्ध्वं हृदयेन नयत्यधः।
जरयत्यन्तरे साधुर्दोषंविषमिवेश्वरः॥

साधु पुरुष किसी के दोष को मुख पर नहीं लाते मनमें ही धारण कर लेते हैं जैसे शिवजी ने विष को पचा लिया।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

विकृतिं नैवगच्छन्ति संग दोषेण साधवः।
आवेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते॥

साधु पुरुष संग के दोष से (दुर्जनों के संग होने पर भी विकार को प्राप्त नहीं होते जैसे सर्पों के लिपटे रहने पर भी चन्दन में विष नहीं आता।

साधोः प्रकोपितस्यापि मनोनायाति विक्रियाम्।
नहि तापयितु शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया॥

किसी के कोप कराने पर भी साधु पुरुष मन में विकार नहीं होता जैसे तिनका की अग्नि से समुद्र का जल गरम नहीं होता।

स्नेहच्छेदेपिसाधूनां गुणा नायान्ति विक्रियाम्।
भंगेनापि मृणालानामनु बध्नन्ति तन्तवः॥

प्रेम के टूटने पर भी साधु पुरुषों के गुण विकार को प्राप्त नहीं होते कमल की डंडी के टूटने पर भी उसमें तन्तु (सूत) रहता है।

सन्तः स्वतः प्रकाशन्ते गुणा न परतोनृणाम्।
आमोदोनहिकस्तूर्याः शपथे न विभाव्यते॥

सन्त पुरुष अपने गुण से प्रकाशित (जाहिर) होते हैं औरों के कहने से नहीं। कस्तूरी की सुगंध स्वतः प्रकाशित होती है सौगन्ध से नहीं।

किमत्र चित्रंयत्सन्तः परानुग्रहतत्पराः।
नहि स्वदेह शैत्याय जायन्तेचन्दनद्रुमाः॥

यदि सन्त पुरुष दूसरों पर कृपा करते हैं तो इसमें अचंभा किस बात का? क्या चन्दन का वृक्ष अपने शरीर की शीतलता के लिये होता है? नहीं, वह औरों को शीतल करता है।

यथा चित्तं तथावाचो यथा वाचस्तथा क्रिया।
चित्ते वाचिक्रिया यां च साधूनामेकरूपता॥

साधु पुरुषों के जो बात मनमें होती है उसी को वाणी से कहते हैं और करते भी वही हैं। मन, वाणी और शरीर का एक सा ही व्यवहार साधुओं का होता है।

निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्तिसाधवः।
नहि संहरते ज्योत्स्नाँ चन्द्रश्चांडाल वेश्मनि॥

साधु पुरुष निर्गुण पुरुष पर भी दया करते हैं। क्या चन्द्रमा चांडाल के मकान में चांदनी प्रकाशित नहीं करता?

उपकारिषुयः साधुः साधुत्वे तस्यकोगुणः।
अपकारिषुयः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते॥

भलाई करने पर यदि भलाई की तो उसके साधुपन का क्या गुण हुआ? अपकार (बुराई) करने पर यदि भलाई करे उसको सज्जन साधु कहते हैं।

संत एव सतांनित्यमापदुद्धरणक्षमाः।
गजानां पङ्क मग्नानां गजाएव धुरंधराः॥

सज्जन पुरुष ही सज्जन की आपत्ति दूर करने में समर्थ होते हैं। कीचड़ में रुँदे हुए हाथी को हाथी ही निकाल सक्ता है।

स्वभावं नैवमुञ्चन्ति सन्तः संसर्गतोऽसताम्।
नत्यजन्ति रुतंमञ्जु काकसंपर्कतः पिकः॥

दुर्जनों के संसर्ग से सज्जन पुरुष अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। कोयल कौआ के संसर्ग से अपनी मीठी बोली को नहीं छोड़ती।

स्वभाव न जहात्येव साधुरापद् गतोपिसन्।
कर्पूरः पावकस्पर्शे सौरभंलभते तराम्॥

साधु पुरुष आपत्ति पड़ने पर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। कपूर अग्नि में डालने पर और भी सुगन्ध देता है।

उपचरितव्याः सन्तो यद्यपि कथयन्ति नैक मुपदेशम्। यास्तेषां स्वैर कथास्ता एव भवन्ति शास्त्राणि॥

संत पुरुष यदि तुमको कुछ उपदेश न दे तो भी उनकी सेवा करो क्यों कि उनकी नित्य प्रति की बोलचाल व व्यवहार है वही तुम्हारे लिए शास्त्र है—शिक्षा दायक है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

किसी का जी न दुखाया करो

(पं० शिवनारायणजी गौड़ नीमच)

भाई! मनुष्यता के नाते तो किसी का मन न दुःखित किया करो। सम्भव है उसमें कुछ कमियां हों, कुछ बुराइयां भी हों। यह भी हो सकता है कि उसके विचार तुम से न मिलते हों, या तुम्हारी राय में उसके सिद्धान्त ठीक न हों। पर क्या इसीलिए तुम उसके मन पर अपने वाक्-प्रहारों द्वारा आघात पहुंचाओगे? तुम यह न भूल जाओ कि वह मनुष्य है, उसके भी मन होता है, तुम्हारे कठोर वचन सुनकर उसके भी हृदय में ठेस पहुंचती है। और उसको भी अपने आत्माभिमान का अपनी सत्यता का। अपनी मनुष्यता के अधिकार का कुछ भान है।

सम्भव है तुम्हारा वाक्चातुर्य इतना अच्छा हो कि तुम उसे अपनी युक्तियों द्वारा हरा दो। सम्भव है वह व्यर्थ विवाद करना ठीक न समझे और तुम अपनी टेक द्वारा उसे झुकादो। यह भी सम्भव है कि उसका ज्ञान अपूर्ण हो और वह बार बार तुमसे हार खाता रहे। पर इन अपने विवादों में ऐसे साधनों का प्रयोग तो न करो जो उसके हृदय पर मार्मिक चोट करते हों। संसार में सुन्दर युक्तियाँ क्या कम हैं? क्या ऐसी बातों का पूर्णतः अभाव ही हो गया है जो उसे परास्त भी करदे, पर उस पर चोट न करें? क्या ऐसे तर्क संसार से चल बसे हैं जिनसे तुम अपना पक्ष भी स्थापित कर लो और उसका भी जी न दुःखे?

तुम भूल न जाओ कि संसार का सत्य तुम्हारे ही पल्ले नहीं पड़ गया है। यह भी याद रखो कि जो कुछ तुम सोचते हो वही पूर्णतः सत्य नहीं भी हो सकता है। तुम्हारे सभी विचार अच्छे हैं और दूसरे के सभी खराब, ऐसा भी तो नहीं कहा जासकता। तुम आक्षेप कर सकते हो कि उसके खराब विचारों का हम विरोध करते हैं। विरोध करो। तुम्हें कौन रोक सकता है? पर इसमें दूसरे के जी को व्यथित करने की क्या आवश्यकता है? तुम्हारा मार्ग सही है, ठीक है। तुम दूसरों को सन्मार्ग पर लाना चाहते हो, उत्तम है। युक्तियों द्वारा दूसरे को परास्त करके स्वपक्ष स्थापित करना चाहते हो—श्रेष्ठ है। पर क्या ये कार्य बिना दूसरे के चित्त को पीड़ा पहुंचाये नहीं हो सकते?

क्या तुम समझते हो कि दूसरे के मन पर घात करने से तुम्हारी बात ऊँची रह जायेगी? क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारे प्रहारों से दूसरे तुम्हारी बातें मान लेंगे? क्या तुम्हारा विचार है कि तुम केवल उसके जी को दुखाते हुए उसे परास्त करके अपनी विजय स्थापित कर लोगे? क्या तुम्हारी धारणा है कि उसका मन चुपचाप तुम्हारे प्रहारों को सहता रहेगा? ऐसा न समझो कि तुम उसको केवल परास्त करके मनवा सकोगे। उसका मन तुम्हारा सदा विरोध करेगा। तुम्हारी बातों को वह मानेगा तो कदापि नहीं, हां भीतर ही भीतर वह तुम्हारा विरोधी अवश्य बन जायगा। उसका हृदय भी तुम्हारी ही भांति कुछ आत्मगौरववान् होता है। उसकी भी इच्छा होती है कि वह तुम्हारे कथनों का प्रतिवाद करे। उसमें भी बदले की छिपी भावना रहती है। तुम उसे दुःखी करके विरोध को बढ़ाते ही हो, अपने मतको स्थापित नहीं करते।

विजय प्रेम से होती है। जो काम प्रेम से निकलता है वह क्रोध, दबाव या आघात से नहीं। किसी को समझाना प्रेम से अधिक अच्छी ढंग से हो सकता है, झिड़कने, फटकारने या चुभती बात कहने से नहीं। मानव मन पर किसी का एकाधिकार तो है नहीं। यदि तुमसे ही कोई आज कहे कि तुम बड़ा बुरा कहते हो कि बहस किया करते हो, तो तुम यही कहोगे न, कि जाओ, करते हैं—तुम्हें इससे क्या? यही दशा सबकी है। दीवार से टकराकर

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

पत्थर लौट जाता है। पहाड़ से टकराकर शब्द प्रतिध्वनित होता है। क्रिया की प्रति क्रिया सदा होती ही है। फिर तुम्हारे जी दुःखाने की प्रतिक्रिया क्यों न होगी? यदि वह प्रकट रूप से तुम्हें कुछ न कहेगा, तो उसकी अन्तरात्मा तो तुम्हें सदा कोसती रहेगी। तुम्हें वह चाहे एक शब्द भी न कहे, पर उसका मन हमेशा कुढ़ता रहेगा।

तुम समझते हो कि तुम स्पष्ट वक्ता हो। तुम्हें अभिमान है कि तुम सत्य के नाम पर किसी की भी अप्रसन्नता से नहीं डरते। तुम्हारा विश्वास है कि अपने सिद्धान्त की यत्किञ्चित् भी अवहेलना देखना तुम नहीं चाहते। पर स्पष्ट वक्ता का अर्थ क्या दूसरे के जीको दुःखाना ही है? क्या सत्य इतनी कठोर वस्तु है कि उसके लिये दूसरे की प्रसन्नता की हत्या करनी पड़े? क्या संसार में तुम्हारे ही मात्र सिद्धान्त सत्य हैं? या संसार में दूसरों को अपने स्वतन्त्र विचार रखने का अधिकार ही नहीं है? सत्य को प्रेम से भी समझाया जा सकता है। स्पष्ट वक्ता इस प्रकार से भी कह सकता है कि किसी दूसरे का जी न दुखे। सिद्धान्त का स्थापन सुन्दर ढंग से भी किया जा सकता है।

'भिन्न रुचिर्हि लोके' के अनुसार संसार भिन्न रुचि वाला है। जब भाईयों-भाईयों और मित्रों-मित्रों में भी सभी बातें समान नहीं होतीं तो साधारण मनुष्यों में तो सदा विचारों का मेल खाते जाना असम्भव ही है। यदि विवाद में सफल होना चाहते हो तो विवाद निष्कर्ष के लिये करो, केवल बकवास के लिये नहीं। यदि अपनी बात की सचाई में तुम्हें विश्वास है तो उस पर अड़े मत रहो। दूसरों को उसे समझाने का प्रयत्न करो। अपने पक्ष को स्थापित करना चाहते हो तो युक्तियों से काम लो, अपने अभिमान के कारण उसे थोपने का प्रयत्न न करो, और चाहे कुछ भी करो मानवता के नाते किसी का जी को तो न दुःखाया करो।

निरुत्साह का मूल।

(श्री हरिभाऊ उपाध्याय)

उत्साह जीवन का धर्म है, अनुत्साह मृ[illegible] का प्रतीक है। उत्साहवान् मनुष्य ही सज[illegible] कहलाने योग्य है। उत्साहवान् मनुष्य आशाव[illegible] होता है, उसे सारा विश्व आगे बढ़ता हु[illegible] दिखाई देता है। विजय, सफलता और कल्य[illegible] सदैव आंख में नाचा करते हैं। उत्साह [illegible] हृदय को अशक्ति ही अशक्ति दिखाई देती है।

उत्साह मय जीवन को देखने के लिए हम आंखों में उनके सुप्त बीजों की आवश्यकता यह सुस्ती बुरी है। जब हमारे हृदय में उत[illegible] होता है, आनन्द होता है, आशा होती है, हमें जनता भी उत्साह—आनन्द—आशा दिखाई देती है।

यदि हम तैयार हैं, तो दुनिया में मुश्[illegible] कौन बात है? कोई बात कठिन और दुस्स[illegible] केवल उन्हीं लोगों के लिए होती है जो या खुद काम करना नहीं चाहते या दूसरों से [illegible] वाना चाहते हैं, या उसके लिए आवश्यक [illegible] और असुविधा सहने को तैयार नहीं हो[illegible] सच्ची लगन और व्याकुलता होने पर न तो सु[illegible] ही पास आ सकती है न असुविधा। काम [illegible] स्तव में कठिन नहीं होता। हमारी कम[illegible] और कम तैयारी उसे कठिन बना देती है। मनुष्य अपने पुरुषार्थ से परमात्मपद तक [illegible] कर लेता है, इसके लिए कौन बात मुश्किल जो बड़े हिंस्र, भयानक जन्तुओं को अपना [illegible] बना लेता है, उसका क्या अपनी गुलामी [illegible] बेड़ियां तोड़ लेना कठिन है? छोटी सी प[illegible] में जो हिचकते हैं, उनके लिए कठिन परी[illegible] पास होने की, बड़ी बड़ी बातें करने की [illegible] क्या स्वयं अपने आप को और दूसरों को [illegible] देना नहीं है?

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

हमारी आजीविका।

(श्री आदित्यप्रसादजी कटरहा दमोह)

लोकोक्ति प्रचलित है कि "जैसा खाओ अन्न, वैसा होवे मन। जैसा पीओ पानी, वैसी बोले बानी"। इस लोकोक्ति में हिन्दू जाति का दीर्घ कालिक अनुभव सन्निहित है। मेरी अपनी सम्मति में इसका यह भी अर्थ होता है कि जिस भावना को लेकर कोई धन उपार्जित किया जाता है, उस धन द्वारा प्राप्त अन्न में वे ही भावनाएं ओत प्रोत रहती हैं और उस अन्न को खाने वाले व्यक्ति पर उन भावनाओं का अनिवार्य प्रभाव पड़ता है। इस कारण अनेकों साधु-सन्त इस बात के लिए विशेष सतर्क रहते हैं कि कहीं उनके खाने में झूठ, अन्याय, छल, धूर्तता और धोखेबाजी की कमाई का अन्न न आ जावे। उनकी दृष्टि में कोई भी व्यवसाय आपकी दृष्टि से छोटा अथवा बड़ा नहीं होता बल्कि वह व्यवसाय जिस भावना से किया जाता है उस भावना की उत्कृष्टता अथवा निकृष्टता उस व्यक्ति के व्यवसाय को बड़ा या छोटा बनाती है।

हमारी कमाई का पैसा तो अन्य लोग यदा-कदा ही खाते हैं पर हम और हमारे आश्रित व्यक्ति नित्य-प्रति ही उसका उपभोग करते हैं अतएव यदि हमारा धन, झूठ, अन्याय, छल या धूर्तता द्वारा उपार्जित हो तो हमारा वह धन हमें अधिकाधिक अन्याय, झूठ और धूर्तता में प्रवृत्त करावेगा और हमारे जीवन को दुखी बना डालेगा। अतएव हमें प्रयत्न करना चाहिए कि हमारी आजीविका शुद्ध हो और वह जन-हित की भावना से ओत-प्रोत हो।

कविश्रेष्ठ गोल्डस्मिथ 'ऊजड़ ग्राम' नामक काव्य में एक ग्रामीण लुहार की आजीविका का वर्णन करते हुए लिखता है कि "उसका भाल ईमानदारी के पसीने से आर्द्र है और वह जो कुछ बन पड़ता है कमाता है। वह संसार के सामने मस्तक ऊँचा उठाकर देखता है—क्योंकि वह किसी का कर्जदार नहीं है"। जिस कमाई के द्वारा हम संसार के सामने मुख ऊँचा उठा करके चल सकें, जिसके कारण हमें दुनिया के किसी आदमी के सामने आंखें नीची न करनी पड़ें वही ईमानदारी की कमाई है अर्थात् यदि हमें किसी की आंख बचाकर कोई कमाई करनी पड़े, यदि हमें उसकी कमाई में किसी भेद को छुपाने के लिए दूसरों से दुराव करना पड़े तो हमारी कमाई ईमानदारी की कमाई नहीं।

एक बार अरब के प्रसिद्ध दानवीर हातिमताई ने अपने नगर के समस्त नगरवासियों को निमंत्रित किया और शाम को वह अकेला ही नगर के बाहर घूमने को चला गया। हातिमताई ने वहां एक नौजवान लकड़हारे को सिर पर लकड़ी का गट्ठा लिए हुए आते देखकर उससे पूछा कि वह हातिमताई के इतने अच्छे भोज में सम्मिलित क्यों नहीं हुआ? उस गरीब नौजवान ने जवाब दिया कि—जो ईमानदारी से उपर्जित एक पाई की भी रोटी खासकता है उसे हातिमताई की भीख की जरूरत नहीं। ईमानदारी की कमाई हमें इस गरीब नौजवान की नाईं ही आत्म-निर्भर और आत्माभिमानी बनाती है। जिस कमाई के कारण हमें अपना आत्म-सम्मान, और आत्म गौरव खोना पड़े वह ईमानदारी की कमाई नहीं हो सकती।

महात्मा हेनरी डेविड थोरो का कथन है कि "परिश्रम से पवित्रता और बुद्धिमानी आती है और प्रमादालस्यसे अज्ञान और इन्द्रिय-लोलुपता' ईमानदारी की कमाई हमें परिश्रमी बनाती है वह हमारे हृदय को पवित्र और शुद्ध बनाती है जिसमें कि फिर हमारे अन्दर ज्ञान का आविर्भाव होता है। जो कमाई हम में अज्ञान, विलासिता और इन्द्रिय लोलुपता का प्रवर्धन करे वह ईमानदारी की कमाई नहीं हो सकती।

जब तक द्रव्योपार्जन का हमारा दृष्टिकोण पवित्र नहीं होता अर्थात् जब तक व्यापार में

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

केवल व्यक्तिगत लाभ का ही ध्यान रखा जाता है तब तक हम उस उपार्जित द्रव्य को शुद्ध आजीविका नहीं कह सकते। ऐसे व्यवसाय से हम अपने व्यक्तित्व को समाज के समष्टिगत जीवन में डुबा नहीं सकते। यदि हम सिनेमा का धन्धा करें और जनता के हित को ध्यान में न रखते हुए ऐसी फिल्में तैयार करें जो लोगों की वासनाओं को उत्तेजित करें तो इस दृष्टिकोण से किए गए सिनेमा के व्यवसाय की कमाई ईमानदारी की कमाई नहीं कही जासकती। तम्बाकू, बीड़ी, चाय, बनस्पति घी, मदिरा आदि के व्यवसाय इस दृष्टिकोण से शुद्ध आजीविका वाले व्यवसाय नहीं होते। यदि हम जनता को संकटमय परिस्थिति में पाकर उसे अपनी वस्तु के अत्यधिक दाम देने को बाध्य करते हैं तो भी हम इस द्रव्य को ईमानदारी से नहीं पा रहे। हमारी द्रव्योपार्जन की यह प्रणाली हिंसात्मक है अतएव असत्य है और त्याज्य है।

द्रव्योपार्जन की जिस विधि में व्यक्तिगत लाभ के साथ साथ लोक-कल्याण का ध्यान रखा जाता है अथवा यों कहें कि जिसमें व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा लोक कल्याण को अधिक महत्व दिया जाता है वह आजीविका पवित्र होती है। वह मनुष्य को ऊँचा उठाती है और वह उसे आसक्त नहीं करती। इस दृष्टिकोण से मनुष्य अपनी क्षुद्र स्वार्थपरता को भूल जाता है और विश्व से अपनी अभिन्नता स्थापित करता है। वह लोक की आत्मा में अपनी आत्मा को डुबा देता है। और इस तरह वह अपने आपको हाड़-मांस के किसी शरीर–विशेष में सीमित नहीं करता। वह समाज के हित में अपना हित देखता है। वह प्रधान तथा लौकिक कल्याण की दृष्टि से काम करता है इसलिए सिद्धि–असिद्धि में लाभ–हानि में प्रफुल्ल अथवा उद्विग्न नहीं होता। इस दृष्टिकोण से किया हुआ कर्म सहज ही निष्काम कर्म होता है, अतएव मोक्षदायक होता है।

भगवान बुद्ध की वाणी।

जो दूसरे को दुख देखकर अपना सुख चाहता है वह वैर में फँस जाता है और उससे छूट नहीं सकता। + +

बर्फीले पर्वत के समान सन्त लोग दूर से ही चमकते हैं। असन्त इस प्रकार अदृष्ट रहते हैं जैसे रात में छोड़ा हुआ तीर। + +

असंयमी और अविवेकी भिक्षु मुफ्त में राष्ट्र का धन खावे इससे तो आग में तपाया हुआ लोहे का लाल गोला खाजाय, वह अच्छा।

+ + +

अपने को इस प्रकार सुरक्षित रख, जैसे किले को बाहर भीतर से सुरक्षित रखते हैं। एक क्षण भी व्यर्थ न जाने दे। क्योंकि जो समय पर काम नहीं करते वह नरक में जाकर दुख उठाते हैं। + + +

छोड़ने योग्य को छोड़ और न छोड़ने योग्य को न छोड़। जो इस प्रकार रहते हैं वह अवश्य सुगति को प्राप्त होते हैं। + +

अगर तुमको ऐसा निष्पक्ष साथी मिल जाय जो नेक और बुद्धिमान हो और किसी प्रकार की कठिनाई से न हारे तो तुम दत्त चित्त होकर उसके साथ चलदो। + +

प्रमाद रहित हो, अपने विचारों को सुरक्षित करो। कीचड़ में फँसे हुए हाथी के समान बुराइयों से ऊपर उठने का प्रयत्न करो।

+ +

सब दानों में धर्म का दान बढ़ कर है। सब रसों में धर्म का रस बढ़ कर है। सब सुखों में धर्म का सुख बढ़कर है।

+ + +

हे भिक्षु! इस नाव को हलकी करदे तब जल्दी चलेगी। राग और द्वेष को छोड़ कर ही तू निर्वाण पावेगा।

+ • +

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

मनुष्यो ! 'मनुष्य' बनो ।

(श्री भागीरथप्रसाद जी गुप्त बहेड़ी)

आज नरतन धारी तो असंख्य दीखते हैं पर नर मन धारी व्यक्तियों की भारी कमी होगई है। इंसान के रूप में हैवान चारों ओर विचरण कर रहे हैं। सर्प से क्रोधी, बिच्छू से दुष्ट, भेड़िये से निर्दय, कुत्ते से जाति द्रोही, कौए से धूर्त, बक से ढोंगी, तोते से बेमुरव्वत, बन्दर से उठाई गीरे, शूकर से अभक्ष भक्षी व्यक्तियों का बाहुल्य है। परन्तु जिनके मन, वचन कर्म में मनुष्यता झलकती हो ऐसे मानव प्राणियों के दर्शन दुर्लभ होरहे हैं।

मनुष्यता को सद्‌गुण घट जाने पर संसार में नाना प्रकार के पाप, कुविचार, कुकर्म, बढ़ते हैं और उनके फल स्वरूप युद्ध, क्लेश, कलह, द्वेष एवं दुख दारिद्रों की अभिवृद्धि होती है। कोई आदमी चैन से नहीं बैठने पाता चिन्ता, आशंका, भय, अविश्वास और अशान्ति से वातावरण तिमिराच्छन्न होजाता है। आये दिन नित नई समस्याऐं उठती हैं, नित नये उत्पात खड़े होते हैं। राजनीतिज्ञ, शासक, नेता और कानून के पंडित उन गुत्थियों को कूट नीतिक आधार पर सुलझाना चाहते हैं। पर उनके प्रयत्न प्रायः असफल ही होते हैं। एक समस्या सुलझ नहीं पाती कि दूसरी दस नई उलझनें सामने आखड़ी होती हैं।

लोक व्यापी अशान्ति को दूर करने के लिए हमें गहराई में उतरना होगा और देखना होगा कि हर क्षेत्र में भरी हुई इन कठिनाइयों और आपत्तियों का वास्तविक कारण क्या है। गंभीरता से विचार करने पर प्रतीत होता है कि अतीत काल की अपेक्षा आज का मनुष्य बुद्धि, चातुर्य, विज्ञान, शिक्षा, शिल्प, धन आदि से अधिक सम्पन्न है परन्तु मनुष्यता की मर्यादा—धर्म, कर्तव्य, विवेक, त्याग, संयम एवं सदाचार से वह बहुत पीछे हट गया है। यह पीछे हटना एक ऐसा पतन का गहन गर्त है जिसमें गिरने की चोट असह्य पीड़ा दायक होती है। उस पीड़ा की तुलना में उन समृद्धियों का कोई मूल्य नहीं, जो आज के मानव प्राणी ने प्राप्त की हैं, जिन्हें वह प्रकृति पर विजय प्राप्त करना कहता है और गर्व से फूला नहीं समाता।

आज आर्थिक उन्नति के आधार पर भावी कार्यक्रम बन रहे हैं। उद्योगी करण, व्यापार और उत्पादन मात्र से सुख शान्ति की स्थापना के स्वप्न देखे जारहे हैं। परन्तु उस महान क्षति का पूरा करने की ओर हमारा ध्यान आकर्षित नहीं होता जो आर्थिक आवश्यकताओं से भी ऊपर है। मनुष्यता के गुणों से हीन प्राणी चाहे रावण से धनवान, शुक्राचार्य से विद्वान, हिरण्य कशपु से पराक्रमी, कंस से योद्धा, मारीच से मायावी, कालनेमि से कूटनीतिज्ञ, भस्मासुर से शक्तिशाली क्यों न होजावें पर वे न अपने लिए, न दूसरों के लिए—किसी के लिए भी शान्ति का कारण न बन सकेंगे। यह समृद्धि अयोग्य लोगों के, कुपात्रों के हाथ में जितनी बढ़ेगी उतना ही क्लेश बढ़ेगा अशान्ति की कालिमा घनी होगी।

निश्चय ही धन बल और बुद्धिबल से हमारी सुविधाऐं बढ़ती हैं और जीवन का सुसंचालन सुगम होजाता है, पर केवल इतने मात्र से सुख शान्ति उपलब्ध नहीं हो सकती। इन समृद्धियों साथ साथ, एवं इनसे भी पहले मनुष्यता के सद्‌गुणों का उन्नयन एवं अभिवर्धन होना चाहिए। शास्त्र की, मनुष्य जाति को पहली शिक्षा है—'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनो। धनवान, बलवान, विद्वान्, चाहे जो बनें परन्तु सबसे पहले हम मनुष्य बनें, इसी में संसार की स्थायी शान्ति का मर्म छिपा हुआ है।

जटा, गोत्र या जाति से कोई ब्राह्मण नहीं होता। जिसमें सत्य और धर्म है वही ब्राह्मण है।

\+ ॥ +

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

भोजनों का पाचन।

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

अन्न चिकित्सा में सबसे महत्वपूर्ण भाग वह है जिसमें पदार्थों के पाचन काल का वर्गीकरण किया गया है। भोजन खाना तथा उसके पाचन में कितना समय लगेगा, यह तत्व प्रत्येक को जानना चाहिये। गुण धर्म और अन्न सेवन विषयक ज्ञान, मनुष्य के पाचनेन्द्रिय सम्बन्धी प्रश्न जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। जठर में पदार्थों के पाचनकाल की विषमता के कारण मनुष्य शरीर में अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है। कुछ पदार्थ पांच मिनट में ही पच जाते हैं, इसके विपरीत कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें पचाने के लिए एक से सात घन्टों की जरूरत होती है। एक ही अवधि में पच जाने वाला भोजन करने से शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है। हम यहां कुछ ऐसे भोजनों की लतिकाएँ पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत करते हैं।

पाँच मिनट में पचने वाला भोजन—

शुद्ध शहद जिसमें शक्कर न मिली हुई हो तुरन्त पच जाता है। दूध और मधु—ये दो ही ऐसे पदार्थ हैं, जिनकी सर्वोत्तमता सभी बुद्धिमानों को स्वीकृत है। मधु शीतल कसैला, हलका, स्वादिष्ट, अग्निदीपक, वर्णकारक, कान्तिवर्द्धक, व्रणशोधक, मेधाजनक, वृष्य, रुचिकारक, त्रिदोषनाशक, स्वरशोधक, हृदय के लिए हितकारी है। यह पांच मिनट में ही पच जाता है। इसके अतिरिक्त कच्चे अंडे का स्वेत भाग, पीला भाग, मक्खन और शक्कर भी सुगमता से पांच मिनट में पच जाते हैं। मक्खन, शहद और शक्कर का मिश्रण एक साथ रखने में बड़ा लाभ दायक होता है।

एक घन्टे में पचने वाले पदार्थ—

दही और मट्ठा पृथ्वीलोक का अमृत है। इसमें जीवन के जितने तत्व हैं, उतने कदाचित किसी में नहीं। विशेषज्ञों का कथन है कि मट्ठे का पाचन २० मिनट में ही पूरा हो जाता है। कच्चा शुद्ध दूध जिसमें अन्य कोई पेय न मिला हो, पकाये हुए प्याज, नरम टमाटर, भुने हुए आलू, गेहूं की रोटी, बिना कुटे चावल, दूध की मलाई, पकाई हुई मक्का की खीलें, पूरी तरह पकाया हुआ सेव, अंडा, खजूर, हरे अन्न, अंजीर अंगूर, नारंगी का रस—ये वस्तुएँ लगभग एक घन्टे में ही पच जाती हैं। फलों के रसों में विशेष कर टमाटर, अंगूर, आम में जीवन तत्व अधिक हैं। खजूर, अंजीर, मुनक्का ऐसे फल हैं, जिन्हें एक साथ लिया जा सकता है। अनाज हरे रूप में बड़ा पुष्टि कारक होता है। यही कारण है कि पहलवान लोग चने पानी में भिगोकर फूल जाने पर खाया करते हैं। ठन्डा भोजन, सड़े हुए फल, या खुले पड़े हुए दूध में पाचन इतनी जल्दी नहीं होगा, यह स्मरण रखिये।

दो घन्टे में पचने वाले पदार्थ—

कुछ पाश्चात्य भोजन विशेषज्ञों के अनुसार प्रायः सब प्रकार की मछलियाँ, कबूतर या फाख्ता का मांस, ताजी डबल रोटी, मुर्गी का मांस, ओट नामक अनाज, डिब्बे में बन्द फल दो घन्टे में पच जाते हैं। फल बहुत शीघ्र पचते हैं पर डिब्बे में बन्द होने से उनमें कुछ रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं अतः वे इतनी जल्दी नहीं पच पाते, जितने पचने चाहिये।

तीन घंटों में पचने वाले पदार्थ—

हम इस श्रेणी में वे भोजन रख सकते हैं जो मस्तिष्क से कार्य लेने वालों के लिए उपयुक्त हैं। जठर की पाचनशक्ति ठीक है, तो ये पदार्थ खाना उत्तम है। इसमें गेहूं की रोटी, फूल गोबी, पशुओं का जिगर, लब्सटर जाति की मछलियां, सूखे हुए मटर दही इत्यादि सम्मिलित हैं।

चार या पाँच घँटों में पचने वाले पदार्थ—

हम हलके भोजन का विवेचन कर चुके हैं। यह बुद्धि जीवियों, दिमागी काम करने वालों

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

के योग्य भोजन है। अब हम उस भोजन पर विचार करेंगे, जिसे शारीरिक परिश्रम करने वाला व्यक्ति, मजदूर इत्यादि ले सकते हैं। स्मरण रखिये, सब प्रकार का तला हुआ अनाज, तरकारियाँ, मछलियां, मांस इत्यादि देर से पचते हैं। वहां आपने किसी वस्तु को तला कि उसके विटेमिन नष्ट हो जाते हैं, जीवाणु तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। बाजार में बिकने वाली चाट पकोड़ी, तली हुई मसालेदार दाल, सेव, अनाज, आलू मांस, बासी रोटियां, तले हुए अंडे, घृतवाली सब्जियें, मिठाइयां, पांच छै घंटों में पचती हैं। जो मजदूर सारे दिन शारीरिक परिश्रम करता है वह तो किसी प्रकार इन गरिष्ठ चीजों को पचा लेता है किन्तु मस्तिष्क वाले मजदूर इसे कदापि न लें।

कभी न पचने वाले पदार्थ—

कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो कभी नहीं पचते। शरीर में रह कर ज्यों के त्यों निकल जाते हैं। ये शरीर की सफाई भर करते हैं। इनसे शरीर को किसी प्रकार की हानि नहीं होती वल्कि उलटा यह लाभ होता है कि पुराने सड़ी गली चीजों को साथ लेकर ये निकल जाती हैं। इस लतिका में सब प्रकार की चोकर, नारियल की छूँछ, दालचीनी, मसाले, कस्ट्रोयल शामिल हैं। पत्ती वाले शाक भी शरीर की सफाई का यही काम करते हैं।

सर्वोत्तम भोजन कौन सा है ?

साठी चावल, जौ, गेहूं, मूँग, अरहर, मीठे रस वाली चीजें, सेंधा नमक ये पदार्थ स्वभाव से ही उत्तम होते हैं। फलों में अनार, आंवला, मुनक्का, खजूर, छुहारा, फालसा, खिरनी और बिजौरा नीबूँ सबसे उत्तम माने गये हैं। पत्तीदार शाकों में बथुवा, पालक, मेंथी, जीवन्ती, पोई अच्छे हैं। दूधों में गोदुग्ध, घृतों में गोघृत, तिलों का तेल, मीठों में शहद सर्व श्रेष्ठ हैं। भोजन में चोकर का कुछ अंश अवश्य रहना चाहिए। चिकनाई के लिए घी, दूध, मट्ठा और मक्खन आवश्यकतानुसार अनिवार्य है। हम अधिक से अधिक तरकारियाँ, पत्तीदार, चीजें, मूली, सलजम, गाजर लें। फलों का छिलका न उतारें। छिलके में भोजन के तत्त्व रहते हैं। प्रातःकाल फलों का—सन्तरे का या टमाटर का रस, खीरे, नाशपाती, ककड़ी या अंगूर के रस का नाश्ता करें, तो पाचन किया ठीक हो जायगी। जाड़ों में अमरूद खूब खाने की चीज है। इससे कैलशीयम खूब मिलता है। सूखे मेवे, जो खरीद सकते हैं, अवश्य खावें और स्वास्थ्य तथा दीर्घायु प्राप्त करें। आंवला एक ऐसा फल है, जिसकी उपयोगिता कभी भूली नहीं जा सकती। खट्टे फलों में सब से महत्वपूर्ण फल नीबू है। भोजन करने से आध घन्टे पूर्व एक गिलास में आधा नीबू निचोड़ देने से सुधा खूब खुल कर लगती है।

मन्दाग्नि के रोगों में वे ही पदार्थ खाने चाहिए जो हल्के हों और जल्द पच जांय। ऐसे रोगियों को जानना चाहिए कि गेहूं का आटा दो घंटे में, मक्का दो घंटे में, चांवल डेढ़ घंटे में और अरारोट दस मिनट में पचता है। चांवल और मूंग की पतली खिचड़ी बहुत हलकी होती है। भोजन के साथ अधिक जल पीने से भोजन ठीक तरह नहीं पचता।

———

आवश्यकता है—

मथुरा की एक प्रतिष्ठित धार्मिक पत्रिका में साहित्यक काम करने के लिए एक कार्यकर्ता की आवश्यकता है। अच्छी साहित्यक योग्यता व इंग्रेजी की जानकारी आवश्यक है। वेतन ५०) मासिक। प्रार्थी अपना पूरा परिचय लिखें।

पत्र व्यवहार का पता—

केशवदेव उपाध्याय

C/O "अखण्डज्योति" कार्यालय, मथुरा।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

ईश्वर की भक्ति।

(श्री प्रेमनरायणजी टण्डन एम. ए. लखनऊ)

ईश्वर क्या है ? यह तो कोई भी ठीक से अब तक नहीं समझ सका है। 'मनुष्य' की बुद्धि से 'ईश्वर' समझा भी नहीं जा सकता। तो भी ईश्वर को 'नेति नेति' कहते हुए भी अध्यात्म पंडितों से लेकर साधारण अशिक्षित व्यक्ति तक ने समझने का प्रयत्न किया है। ईश्वर के सम्बन्ध में प्रत्येक की व्यक्तिगत धारणा होती है और यह आंशिक सत्य और आंशिक ही पूर्ण होती है। मेरे विचार से ईश्वर एक वह अलौकिक अवर्णनीय और अव्यक्ति शक्ति है जो निखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टा तथा संरक्षक है। हम उसे खुदा, गाड, भगवान, एलेक्ट्रीसिटी, ग्रवेटेशन फोर्स या नेचर चाहे जो भी नाम दें। अध्यात्मवादी प्रकृति और पुरुष दो भिन्न २ सत्तायें और अनीश्वरवादी केवल प्रकृति के ही अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। थोड़ा बहुत भेद होते हुए भी घुमा फिरा कर बात एक ही आ जाती है। एक अदृश्य सर्वव्यापक अनादि, अजन्मा तथा अमर शक्ति को ही मैं ईश्वर समझता हूं। आत्मा, परमात्मा का स्वरूप है अतः 'अहं ब्रह्मास्मि' के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति ही अवतारी ब्रह्म है। जिसमें जितनी अधिक मात्रा में 'कलायें' हैं वह उतना ही पूर्ण और ईश्वर-स्वरूप या ईश्वर है। इस प्रकार से राम, कृष्ण, बुद्ध सभी ईश्वरावतार हैं।

उपासना करने के यों तो आठ भेद हमारे धर्म शास्त्रों ने बताये हैं। ठीक भी है वह। किन्तु मैं उत्तम उपासना कर्म और ज्ञान में मानता हूं। ईश्वर में या ईश्वरीय व्यक्तियों में जिन गुणों को प्रधानता होती है, उन्हें ही अपना लेना, अपने को 'ईश्वर' बना लेना, वचन, कर्म, मन की एकता स्थापित करके अन्तरात्मा के आदेशों का पालन करना, यही सब सच्ची उपासना है। यों तो यम-नियम-प्राणायाम--जप—माला—तिलक सभी उपासना है क्योंकि चित्त की एकाग्रता तथा इन्द्रिय-निग्रह द्वारा इससे हमारा व्यक्तिगत लाभ ही है। इन साधनाओं द्वारा हम 'ईश्वर' की समीपता प्राप्त करने में अधिक सुविधा तथा सफलता पाते हैं अतः यह भी गौण श्रेणी की उपासना है। अन्तरात्मा के आदेश को पालन करके 'उपासना' की सार्थकता होना और समझना चाहिये।

ईश्वर को प्रसन्न करने का उपाय केवल यही है कि अपने से निस्वार्थ भाव से जो भी सेवा, त्याग, परोपकार हो सके वह किया जाय। संसार क्या करता है, संसार क्या कहेगा—यह सब व्यर्थ की बातें हैं। आत्मा क्या कहेगी, ईश्वर क्या कहेगा, यही मुख्य बात है। यही ईश्वर की प्रसन्नता है।

नरसी मेहता ने वैष्णव की व्याख्या कर दी है--'वैष्णव जन तो तेई कहिए जे परि पराई जाने रे।' भगवद्गीता के आदेशानुसार जो फलाशा रहित कर्म करता है वही ईश्वर भक्त है। 'परमात्मा के पुत्रों की सेवा ही ईश्वर सेवा है' ही जिनका सिद्धान्त है, वही ईश्वर भक्त हैं। सद्वृत्तियां, सद्भावनाएँ, परोपकार, सत्य, अहिंसा, आत्म-बलिदान, दृढ़ता, ईश्वरीय बुद्धि, शुद्ध आचरण, कर्त्तव्यपरायणता आदि यही ईश्वर भक्त के लक्षण हैं। पं० जवाहर लाल नेहरू उतने ही बड़े ईश्वर भक्त हैं जितने पांडचेरी के अरविंद जी। उपासना करने में भेद है केवल। मनुष्यता, सौहार्द्रता, सज्जनता आदि यही ईश्वरी भक्त के लक्षण हैं। ईश्वर भक्त के लिए प्रत्येक धर्म आदरणीय है। उसे किसी से द्वेष नहीं। जो पतितों अपराधियों तथा ठुकराये हुओं को भी अपनाता है वही ईश्वर भक्त है। मंदिर में बैठ कर पूजा करने वाला भले ही एक बार ईश्वर भक्त न हो किन्तु जो सड़क पर गिरे हुए कोढ़ी को प्रेम से उठा कर सहायता करता है वह अवश्य ईश्वर भक्त है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

आगे ही बढ़ना अटल नियम

(श्री लक्ष्मी नारायण टंडन 'प्रेमी' एम० ए०, लखनऊ)

चढ़ना है, चढ़ता जा प्राणी ।
ध्रुव नियम यही है ईश्वरीय-बढ़ना है, बढ़ता जा प्राणी ॥
भूला मानव ! पहिचान तनिक अपने को, अपना स्वावलम्ब,
तू कब निरीह, एकाकी है, ईश्वर तव गुरु, पितु, बन्धु, अम्ब,
ज्योतिर्मय कर निज आत्म-ज्योति, केवल इतना ही है विलम्ब,
उस प्रकृति पुरुष का पृष्ठ-पृष्ठ पढ़ना है, पढ़ता जा प्राणी ।
चढ़ना है, चढ़ता जा प्राणी, बढ़ना है, बढ़ता जा प्राणी ॥
तू स्वयं ब्रह्ममय, सत्य ! परम !!—कण कण में जब उसकी सत्ता,
सत्, चित्, आनन्द रूप जब है अवनीतल का पत्ता पत्ता,
हां जागृत करना है तुझको निज सुप्त शक्ति को अलबत्ता,
भवसागर तुझे तारना है—तरना है, तरता जा प्राणी ।
चढ़ना है, चढ़ता जा प्राणी, बढ़ना है, बढ़ता जा प्राणी ॥
सब तो तू ही; सब ही तेरे, फिर कौन यहां है बेगाना,
फिर मेरा-तेरा कहां रहा—सब तेरा जाना—पहिचाना,
तू छिन्न-भिन्न कर दे माया का गूढ़ घना ताना-बाना,
ओ ! अमर ! मुक्ति के अधिकारी !! कढ़ना है, कढ़ता जा प्राणी ।
चढ़ना है, चढ़ता जा प्राणी, बढ़ना है, बढ़ता जा प्राणी ॥
दुख को अपना, कर पान हलाहल, बन जा नीलकंठ शंकर,
तुझको किसका भय रे मानव ! तू तेज-पुञ्ज, तू प्रलयंकर,
तू स्वामी है, स्वामी ही रह, तू गुरु-गौरव, तू कब किंकर,
तू कारण है, तू स्रष्टा है, गढ़ना है, गढ़ता जा प्राणी ।
चढ़ना है, चढ़ता जा प्राणी बढ़ना है, बढ़ता जा प्राणी ॥
तू दिव्य, अलौकिक, आदि-शक्ति, तेरी 'ब्रह्माण्ड' कहानी है,
पर महावीर सम भूला निज बल, केवल याद दिलानी है,
अध्यात्म-भाव के बीज-रूप ! सुन ले, तू ही वरदानी है,
"प्रेमी" जग में जीवन-मृदङ्ग मढ़ना है, मढ़ता जा प्राणी ।
चढ़ना है, चढ़ता जा प्राणी बढ़ना है, बढ़ता जा प्राणी ॥

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.